मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 12 ● वर्ष 2 ● अंक 3 ● मई 2012 ● पाँच रुपये ● सोलह पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

मई दिवस पर मेहनतकशों का आह्वान

मज़दूर आन्दोलन के क्रान्तिकारी पुनर्जागरण के लिए आगे बढ़ो!
टुकड़ों-रियायतों के लिए नहीं, समूची आज़ादी के लिए लड़ो!

सम्पादकीय

देश के करोड़ों-करोड़ मेहनतकशों के लिए हर साल की तरह इस बार भी मई दिवस आया और चला गया। इसकी वजह यह है कि मक्कार, फ़रेबी, नक़ली मज़दूर नेताओं ने इसे एक अनुष्ठान बना दिया है जिसमें मज़दूरों की भारी आबादी की न तो कोई भागीदारी होती है और न ही उन्हें इसकी क्रान्तिकारी परम्परा की कोई जानकारी है। मई दिवस वास्तव में मज़दूर वर्ग के उन शहीदों की क़ुर्बानियों को याद करने का एक मौक़ा है, जिन्होंने अपनी ज़िन्दगी देकर पूरी दुनिया के मज़दूरों को यह सन्देश दिया था कि उन्हें अलग-अलग पेशों और कारख़ानों में बँटे-बिखरे रहकर महज़ अपनी पगार बढ़ाने के लिए लड़ने के बजाय एक वर्ग के रूप में एकजुट होकर अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा। काम के घण्टे कम करने की माँग उस समय की सर्वोपरि राजनीतिक माँग थी।

इस बार भी मई दिवस पर तमाम औद्योगिक क्षेत्रों में, सरकारी-गैरसरकारी प्रतिष्ठानों में जगह-जगह 'सीटू', 'एटक' व 'ऐक्टू' जैसी संशोधनवादी यूनियनों ने राजनीतिक कर्मकाण्डों का आयोजन किया। हमेशा की तरह मज़दूरों को छोटे-मोटे टुकड़े दिलाने के अपने कारनामों के बखान तथा कुछ और टुकड़े दिलाने के वायदे किये गये। मई दिवस के शहीदों के सपने कैसे पूरे होंगे? पूँजी के बर्बर शोषण-उत्पीड़न से मज़दूर वर्ग को आज़ादी कैसे मिलेगी? इतिहास ने मज़दूर वर्ग के कन्धों पर कौन-सी ऐतिहासिक ज़िम्मेदारियाँ सौंपी हैं। इन सवालों पर चर्चा की उम्मीद इन संशोधनवादी घाघों से तो की ही नहीं जा सकती। पूँजीवाद-साम्राज्यवाद से मज़दूर वर्ग की मुक्ति का रास्ता क्या है? इस सवाल पर वे गोलमोल बात करते हुए संघर्ष करने के लिए ललकारते हैं जिसका अर्थ होता है चुनावी वामपन्थी पार्टियों को संसद-विधानसभाओं में अधिक से अधिक सीटें दिलाना। इन ग़द्दारों ने मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को कलंकित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है, ताकि मज़दूर वर्ग उससे सच्ची प्रेरणा न ले सके, वर्तमान की चुनौतियों के आगे घुटने टेक दे और भविष्य के सपने न देख सके।

मई दिवस दुनिया के मेहनतकशों का त्योहार है। एक ऐसा दिन **'जब तमाम देशों के मेहनतकश, वर्ग-चेतना की दुनिया में प्रवेश करने का जश्न मनाते हैं, इन्सान के हाथों इन्सान के शोषण और दमन को ख़त्म करने के लिए अपनी लड़ाकू एकजुटता का इज़हार करते हैं, करोड़ों मेहनतकशों को भूख और ग़रीबी की ज़िन्दगी से आज़ाद कराने की प्रतिज्ञा करते हैं।'** इन शब्दों में मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक और नेता **लेनिन** ने मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत और उसके महत्व को रेखांकित किया था।

मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत को आगे बढ़ाने का अर्थ यह नहीं कि आज हम फिर से उन्हीं नारों और तात्कालिक राजनीतिक कार्यभारों को फिर से दुहरायें जिन्हें शिकागो के मज़दूर साथियों ने बुलन्द किया था। बेशक आज 'काम के घण्टे आठ करो' का नारा नये सिरे से प्रासंगिक हो उठा है। आज 'आठ घण्टे काम' का क़ानून तो बना हुआ है कारखानों में मज़दूरों से 12-14 घण्टे काम कराया जा रहा है। अकूत क़ुर्बानियों से हासिल अन्य तमाम जनवादी अधिकारों को भी छीनते चले जाने का सिलसिला ज़ोरों पर है। मज़दूरों के जनवादी अधिकारों को फिर से हासिल करने के लिए संघर्ष संगठित करना मज़दूर आन्दोलन का फ़ौरी राजनीतिक कार्यभार है। मगर फ़ौरी आर्थिक-राजनीतिक संघर्षों को संगठित करते हुए कभी भी मज़दूर आन्दोलन के दूरगामी लक्ष्य को आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहिए। मज़दूर आन्दोलन का अन्तिम लक्ष्य है इन्सान द्वारा इन्सान के शोषण का पूरी तरह ख़ात्मा, मानवता की सच्ची आज़ादी। आज की दुनिया में यह लक्ष्य केवल पूँजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी नयी सर्वहारा क्रान्तियों के ज़रिये ही हासिल किया जा सकता है। फ़ौरी संघर्षों में नेतृत्व देते हुए मज़दूरों के क्रान्तिकारी हिरावलों को आम मज़दूरों को निरन्तर दूरगामी लक्ष्यों के बारे में शिक्षित-प्रशिक्षित करना चाहिए। आम मज़दूरों को पूरी स्पष्टता के साथ यह समझाना होगा कि जब तक पूँजीवाद कायम रहेगा तब तक मज़दूरी या सुविधाओं में कोई भी बढ़ोत्तरी उन्हें केवल थोड़ी राहत ही पहुँचा सकती है। उन्हें अभाव व ज़िल्लत की ज़िन्दगी से पूरी आज़ादी तभी

(पेज 15 पर जारी)

मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी और मार्क्सवाद को विकृत करने का गन्दा, नंगा और बेशर्म संशोधनवादी दस्तावेज़

माकपा की बीसवीं कांग्रेस में पेश विचारधारात्मक प्रस्ताव

● अभिनव

हाल ही में देश की दो सबसे बड़ी संसदीय वामपन्थी पार्टियों ने अपनी कांग्रेस आयोजित की। हालाँकि, मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी कर चुकी इन पार्टियों की कांग्रेस पर चर्चा करने का कोई ख़ास मतलब नहीं बनता है, मगर फिर भी हम कुछ कारणों से इन पार्टियों की कांग्रेस की चर्चा करेंगे। इसका एक कारण यह है कि संगठित मज़दूर वर्ग का एक हिस्सा अभी भी इनके प्रभाव में है। हालाँकि, संगठित मज़दूर वर्ग का एक हिस्सा पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा सहयोजित किया जा चुका है, मगर फिर भी एक विचारणीय हिस्से ने अभी भी अपने सर्वहारा वर्ग चरित्र की क्रान्तिकारी अन्तर्वस्तु को नहीं खोया है। दूसरा कारण यह है कि असंगठित मज़दूरों की विशाल बहुसंख्या में भी तमाम मज़दूर साथी ऐसे हैं जो इन संसदीय वामपन्थियों को लेकर भ्रम में हैं, या उन्हें औरों से बेहतर मानते हैं। हम उनके सामने भी इन संसदीय वामपन्थियों और विशेषकर भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के असली चरित्र को साफ़ करना चाहते हैं। तीसरा कारण यह है कि देश के करोड़ों-करोड़ मज़दूरों के पास एक व्यापक क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियन के रूप में कोई विकल्प मौजूद नहीं है और इसलिए किसी भी औद्योगिक विवाद के पैदा होने पर वे माकपा की सीटू या भाकपा की एटक की शरण में जाने को मजबूर हो जाते हैं। वैसे तो ये संशोधनवादियों की ये ट्रेड यूनियनें मज़दूरों के संघर्ष के साथ बार-बार ग़द्दारी करती हैं, या फिर मज़दूरों को दो-चार आना दिलाकर कुछ कमीशन वसूलती हैं और अपनी कमाई करती हैं, लेकिन यह सब जानते हुए भी चूँकि मज़दूरों के पास और कोई विकल्प नहीं होता इसलिए वे इन्हीं ट्रेड यूनियनों के पास जाने को मजबूर होते हैं। विकल्पहीनता की इस स्थिति के कारण सीटू और एटक जैसी धन्धेबाज़ ट्रेड यूनियनों ने भारत के ट्रेड यूनियन आन्दोलन में अभी भी अपनी विचारणीय पकड़ बना रखी है। इस विकल्पहीनता का एक कारण यह भी है कि तमाम मार्क्सवादी-लेनिनवादी संगठनों के पास मज़दूर वर्ग के आन्दोलन की कोई स्पष्ट कार्यदिशा ही मौजूद नहीं है और उनकी ज़्यादा ताक़त धनी और मँझोले किसानों की माँगों के

(पेज 5 पर जारी)

पूँजी के ऑक्टोपसी पंजों में जकड़ी स्त्री मज़दूर 4
पहले मज़दूर राज, पेरिस कम्यून की चित्र कथा 8-9
ग़ुलामों की तरह खटने वाले घरेलू मज़दूरों को उनकी माँगों पर संगठित करना होगा 11
मई दिवस की सचित्र कहानी 12-13
रिकार्ड अनाज उत्पादन के बावजूद हर चौथा आदमी भूखा क्यों? 16
जालन्धर हादसा: एक और सामूहिक हत्याकाण्ड 16

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

मज़दूर कुछ करे तो क़ानून, मालिक लूटें तो कोई क़ानून नहीं

मैं यहाँ एक लोटा प्लांट में काम करता हूँ। मैं खुद लिखना नहीं जानता, यह चिट्ठी मैंने अपने एक साथी से लिखवायी है। पिछले दिनों हमारे कारखाने में एक घटना घटी। हमारे साथ काम करने वाले एक मज़दूर ने लोहे के कुछ पुर्जे जो हम बनाते हैं, अपने जूतों में छिपाकर ले जाने की कोशिश की। हमारे साथ के ही कुछ मज़दूरों को इस बात का पता चल गया और उन्होंने उससे लोहे का सामान छीन लिया। उन्होंने उस मज़दूर को पीटा और सिक्योरिटी वालों के हवाले कर दिया। उन्होंने फिर उस मज़दूर को पीटा और मालिक को बुला लिया। मज़दूर द्वारा चोरी किया गया सामान मुश्किल से 40-50 रुपये का होगा लेकिन मालिक ने मज़दूर के बार-बार माफी माँगने के बावजूद पुलिस को बुला लिया। पुलिस ने चोरी किया सामान उसके हाथों में पकड़ा कर तस्वीर ली और थाने ले जाकर बन्द कर दिया जहाँ वो एक सप्ताह से बन्द है। इस घटना के बाद मुझे बहुत बेचैनी रही। मैं सोचता हूँ कि एक मज़दूर द्वारा एक छोटी सी चोरी करने पर, वह भी पता नहीं किस मजबूरी में की होगी, पुलिस तुरन्त पहुँच गयी और कानून अपना काम फुर्ती से करने लग पड़ा। जबकि मालिक रोज मज़दूरों को लूटते हैं और गाली-गलौज करते हैं, मज़दूरों को राह में अक्सर लूट लिया जाता है, कारखानों में रोज मालिकों की मुनाफे की हवस के कारण मज़दूरों के हाथ-पैर कट जाते हैं या वे मौत के मुँह में धकेल दिये जाते हैं। मालिक सभी श्रम कानूनों को कुछ नहीं समझते लेकिन पुलिस और कानून कभी किसी मज़दूर की मदद के लिए नहीं आते। अगर कभी मज़दूर शिकायत दर्ज करवाने थाने चले भी जायें तो पुलिस उनकी एक नहीं सुनती और कई बार तो उल्टा मज़दूरों को ही हवालात में बन्द कर दिया जाता है। मज़दूरों की काम की परिस्थितियाँ और रिहायश के इलाके बहुत बुरे हैं लेकिन यह किसी कानून को दिखाई नहीं देता। यह कैसा कानून है जो सिर्फ मज़दूरों पर ही लागू होता है, यह कैसा पुलिस-प्रशासन है जिसे सिर्फ मज़दूरों के गुनाह ही दिखते हैं?

– लुधियाना से एक मज़दूर

मज़दूरों की असुरक्षा का फ़ायदा उठा रही हैं तरह-तरह की कम्पनियाँ

आज ऐसा लगता है जैसे फैक्ट्रियों में मालिकों के आगे मज़दूरों ने घुटने टेक दिये हैं। असहाय हो गये हैं। न्यूनतम मज़दूरी, फ़ण्ड, बोनस, ई.एस.आई., हक़-अधिकार, नियम-क़ानून सब ठेंगे पर रखकर मालिकों की पूरी जमात ने बेतहाशा लूट मचा रखी है। जो मालिकों के मुँह से निकले समझो वही क़ानून है। वरना बोरी-बिस्तर लेकर गेट के बाहर टहलते नज़र आओगे। मालिकों का तो काम ही है लूटना, मगर लगता है जैसे हम मजदूरों ने भी इसी को अपना धर्म मान लिया है कि बाबूजी जो कहें वही सही है। इसके आगे का कोई रास्ता नहीं। आज हर मज़दूर इतना ज्यादा असुरक्षित हो चुका है कि वह अपना अस्तित्व बचाने के लिए तरह-तरह की तीन-तिकड़मों में फँसता चला जा रहा है। तनख़्वाह कम होने की वजह से मज़दूरों की सोच में यह बैठ चुका है कि अगर ओवरटाइम, नाइट व डबल ड्यूटी नहीं लगायेंगे तो गुज़ारा नहीं होगा। और हकीकत भी यह है कि आठ घण्टे काम के लिए 3500-4000 रुपये महीने की तनख़्वाह से ज़िन्दगी की गाड़ी रास्ते में ही रुक जायेगी।

मज़दूरों की इसी बेबसी का फ़ायदा उठाकर तमाम ठग, दलाल, बिचौलिये और यहाँ तक कि बड़ी-बड़ी मल्टीलेवल मार्केटिंग कम्पनियाँ भी मज़दूरों को गुमराह कर टोपी पहनाने का काम कर रही हैं। इसी लाचारी के कारण ये सब भी मज़दूरों को लूटकर चाँदी काट रहे हैं। सुरक्षा के अभाव में आज हर मज़दूर यही सोचता है कि कुछ रुपये फिक्स डिपोज़िट में डालकर बचा लिया जाये। गाढ़े वक़्त में काम आने के लिए कुछ बचत कर लिया जाये। एक एल.आई.सी करवा लें। दस-पाँच लोग आपस में मिलकर ही कमेटी चला लेते हैं। दस लोग दस महीने तक पाँच-पाँच सौ रुपये या इससे अधिक जितना भी जमा करते हैं, फिर बोली लगाकर या पर्ची निकालकर हर महीने एक आदमी को एक साथ पाँच हज़ार या कुछ घाटा खाकर रुपये मिल जाते हैं। अब तो आलम यहाँ पहुँच गया है कि एल.आई.सी., सहारा इण्डिया, बजाज इन्स्योरेन्स जैसी कम्पनियों के एजेण्ट कुकुरमुत्तों की तरह घर-घर जाकर मज़दूरों का डेली बीमा कर रहे हैं। बताते हैं कि रोज़ 5, 10, 20, 50 या अधिक जितना भी 5 साल या दस साल तक जमा करो और 10 साल में कुछ ब्याज मिलाकर एकमुश्त रुपया मिल जायेगा। मगर इसमें अधिकतर मज़दूरों का रुपया मारा जाता है। अक्सर तो मज़दूर एक इलाक़े से दूसरे इलाक़े में चले जाते हैं या कभी काम छूट जाने या कोई परेशानी आ जाने पर किश्तें पूरी नहीं कर पाते हैं। इसके अलावा एमवे, मोदीकेयर, ड्यूसॉफ़्ट, यूनाइटेड इण्डिया, आरसीएम, एलोवेरा, सिक्योर लाइफ़ जैसी असंख्य मल्टीलेवल मार्केटिंग कम्पनियाँ मजदूरों को सपना दिखा-दिखा कर रुपये ऐंठने का काम कर रही हैं। जानकारी न होने की वजह से बहुत से मज़दूर अपनी मेहनत की कमाई उन्हें दे बैठते हैं, और एक बार रुपये चले जाने के बाद इन कम्पनियों के एजेण्टों के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। अभी शाहबाद डेयरी की झुग्गी बस्तियों में कुछ एजेण्ट जो करीब डेढ़ साल से चक्कर लगा रहे थे, दर्जनों परिवारों के हज़ारों रुपये बटोरकर चम्पत हो गये।

इन सारी समस्याओं के पीछे अगर जड़ खोदें तो यही समझ आता है कि ज़िन्दगी की असुरक्षा ही कारण है। अगर मज़दूरों को उनका पूरा हक़ मिले, रोज़ी-रोटी, मकान, शिक्षा, दवा-इलाज और बच्चों के भविष्य की गारण्टी हो तो कोई ऐसे झूठे सपनों के चक्कर में अपने आज को बर्बाद क्यों करेगा? हमें तो यही लगता है कि ऐसी भूलभुलैया में भटकने के बजाय हम मज़दूरों को अपनी ज़िन्दगी बदलने के लिए लड़ने के बारे में सोचना चाहिए।

– आनन्द, बादली, दिल्ली

मज़दूर बिगुल की नयी वेबसाइट
आप यहाँ देख सकते हैं:

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकायें उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।
2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।
3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।
4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।
5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मई दिवस पर मेहनतकशों का आह्वान

(पेज 15 से आगे)

बढ़ाते हुए व्यावहारिक रूप से संगठित कर पायेगा।

अपने असहनीय हालात के ख़िलाफ़ आज देश में जगह-जगह मज़दूरों के स्वत:स्फूर्त संघर्ष भी उठ रहे हैं। इन संघर्षों में हस्तक्षेप करके उन्हें एक क्रान्तिकारी दिशा देने की कोशिश करने के बजाय अनेक क्रान्तिकारी संगठनों में इस स्वत:स्फूर्तता का जश्न मनाने की प्रवृत्ति दिखायी दे रही है। इसके विरुद्ध संघर्ष करना भी बेहद ज़रूरी है।

आज पूँजीवाद के बढ़ते संकट के दौर में अपना मुनाफ़ा बनाये रखने के लिए पूँजीपति मज़दूरों की हड्डियाँ तक निचोड़ डाल रहे हैं। लेकिन मज़दूर भी अब चुपचाप बर्दाश्त नहीं कर रहे। भारत ही नहीं, पूरी दुनिया में सन्नाटा टूट रहा है। मज़दूर वर्ग नये सिरे से जाग रहा है। ऐसे में मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी हरावलों के सामने मज़दूर आन्दोलन के क्रान्तिकारी पुनर्जागरण में जी-जान से जुट जाने की चुनौती है। आइये, हम इस चुनौती को स्वीकार करें। मई दिवस के क्रान्तिकारी शहीदों को याद करते हुए आइये, ऊँची आवाज़ में यह विश्व ऐतिहासिक नारा बुलन्द करें **–दुनिया के मज़दूरो, एक हो!**

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782
- जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)
- 114, जनता मार्केट, रेलवे बस स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001
- जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09910462009
- जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार खुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन

**'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।
यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।**

मज़दूर साथियो, 'आपस की बात' आपका पन्ना है। इसमें छापने के लिए अपने कारख़ाने, काम, बस्ती की समस्याओं, हालत के बारे में, अपनी सोच के बारे में या 'बिगुल' के बारे में लिखकर हमें भेजिये।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigul@rediffmail.com
मूल्य	: एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक ख़र्च सहित)

यहाँ मज़दूर की मेहनत की लूट के साथ ही उसकी आत्मा को भी कुचल दिया जाता है

मैं लुधियाना के फोकल प्वाइण्ट स्थित नाहर फैक्टरी में काम करती हूँ। यहाँ सिलाई का काम होता है। कमीजें, पैंटें, जींसें, निकरें, मैक्सियाँ, टी-शर्ट आदि यहाँ सिली जाती हैं। 'कॉटन काउण्टी' के नाम से इनका खुद का शोरूम है। यहाँ अनेक अन्य ब्राण्डों के लिए भी सिलाई का काम होता है। मोंटे कार्लो, पीटर इंग्लैण्ड, मैक्स आदि इनमें प्रमुख हैं।

एक कमीज या एक पैंट या फैक्टरी की भाषा में कहें तो प्रोडक्शन के पीस पर 30 से 50 सिलाई मशीनों पर काम होता है। इस तरह प्रोडक्शन की एक लाइन तैयार की जाती है। प्रोडक्शन लाइन में मशीनों की संख्या पीस के डिजाइन से तय होती है। अगर किसी लाइन पर 40 मशीनें हैं तो उसके लिए 40 टेलर, निशान आदि लगाने के लिए लगभग 15 हेल्पर लगाये जाते हैं। कुल मिलाकर कारखाने में तीन से चार हज़ार मज़दूर काम करते हैं जिनमें अधिक संख्या स्त्रियों की है।

मज़दूरों से अधिक से अधिक काम लेने के लिए इंचार्जों, सुपरवाइजरों, चेकरों और लग्गु-भग्गुओं का टोला अपने मुँहों में हण्टर रूपी जुबान लेकर तैनात रहते हैं जो सड़ासड़ हम पर बरसते रहते हैं। माँ-बहन की गालियाँ देते हुए, बात-बेबात ज़लील करते हुए हमारे सिर पर सवार रहते हैं। मशीन धागा तोड़ रही है, मशीन आवाज़ कर रही है, उसमें तेल खत्म हो गया है, पेंसिल को छीलना है, चॉक खत्म हो गया है, फैब्रिक में कोई डिफेक्ट है, धागा खत्म हो गया है आदि सभी छोटी-छोटी बातों के लिए माँ-बहन की गालियों के साथ हमें ज़लील किया जाता है।

नाहर में कौन-से श्रम कानून लागू होते हैं – यह हमें नहीं पता। आपकी तनख़्वाह से कितने पैसे काट लिये गये, क्यों काट लिये गये – कहीं कोई सुनवाई नहीं। यहाँ पीएफ़, बोनस, ईएसआई, ग्रेच्युटी के बारे में क्या नियम हैं – हमें नहीं मालूम। 8-10 साल से काम करने वाले लोगों को भी नहीं मालूम। कोई कुछ पूछ नहीं सकता। जो पूछने की हिमाकत करता है, उसका हिसाब कर दिया जाता है।

रोज दो से लेकर चार घण्टे तक ओवरटाइम लगता है। लेकिन ओवरटाइम के पैसे डबल के बजाय सिंगल रेट से दिये जाते हैं। एक सेलरी स्लिप जैसी कोई पर्ची हमारे दस्तखत करवाकर देखने के लिए दी जाती है जो 5-10 मिनट बाद फिर वापिस ले ली जाती है। इसमें भी सब गड़बड़ घोटाला होता है। ओवरटाइम का भुगतान इसमें मेडिकल वाली एक मद में लिखा होता है।

अगर यहाँ मज़दूरों को कारख़ाना परिसर में दी जाने वाली सुविधाओं की बात करें, तो वे हमारे साथ मज़ाक करती सी लगती हैं। यहाँ हम औरतों की संख्या कोई दो-ढाई हज़ार के आस-पास है। लेकिन शौचालय हैं सिर्फ दो, जिनमें चार-चार टॉयलेट हैं यानि कुल आठ टॉयलेट इतनी औरतों के लिए हैं। इनमें से चार में पानी नहीं आता। इनमें नल को स्थाई रूप से बन्द कर दिया गया है। ये आठों टॉयलेट इतने गन्दे होते हैं कि सड़ाँध मार रहे होते हैं। दोनों शौचालयों के लिए सिर्फ एक-एक ट्यूब लाइट लगी है। सीलन का साम्राज्य तो, छत, दीवारों को पार करके फर्श तक फैला है। फर्श पर कीचड़ ही कीचड़ होता है। इन कीचड़ भरे, सड़ाँध मारते, सीलन भरे अँधेरे शौचालयों से हम औरतें क्या-क्या बीमारियाँ अपने शरीरों में पाल रही हैं – हमें खुद नहीं पता।

पीने वाले पानी की टोटियों की जगहों पर भी दो-दो इंच काइयाँ जमी हैं। एक अन्दाज़ा ही हम लगा सकते हैं कि जहाँ से इनमें पानी आता है, उन टंकियों की क्या हालत होगी। एक टंकी जो मैंने देखी जिसका गटर के मुँह जितना बड़ा मुँह है और उसपर कोई ढक्कन नहीं है।

मज़दूरों के शोषण, दमन और लूट के जितने तरीके हो सकते हैं – वे सब नाहर में अपनाये जाते हैं। कारख़ाने में जिस तरफ़ नज़र उठाओ – मज़दूरों पर धक्केशाही का एक वीभत्स नज़ारा देखने और सुनने को मिलेगा।

नाहर में दिये जाने वाले 'गेटपास' की भी कहानी बेमिसाल है। किसी ने सुपरवाइजर से बहस की – लीजिये गेटपास। प्रोडक्शन नहीं दे पा रहे – लीजिये गेट पास। पानी, शौचालय आदि कारण से लंच टाइम से 10-15 मिनट देर से सीट पर पहुँचे – लीजिये गेट पास। महीने में एक बार से ज्यादा नागा किया – लीजिये गेट पास। उपरोक्त किसी भी कारण से 5 दिन, 7 दिन, महीना, दो महीने मतलब कितनी भी समयावधि के लिये गेटपास दिया जायेगा। मतलब हम बिना तनख़्वाह घर बैठें। दरअसल प्रोडक्शन लाइन सेट करने के हिसाब से जितने लोगों की ज़रूरत नहीं होती, उन्हें यह 'गेटपास' दे दिया जाता है।

मुझे यहाँ टेलर के रूप में भरती किया गया था। काम के पहले दिन ही मुझे यहाँ की परिस्थितियों का अन्दाज़ा हो गया था। मुझे दूसरी मंज़िल के एक हॉल की एक लाइन के सुपरवाइजरों के हवाले कर दिया गया। लाइन के असेम्बली हिस्से के सुपरवाइज़र ने मुझसे पीस बनवाये – तीन चार लग्गू-भग्गू मेरी मशीन को घेरे रहे। बहुत अच्छी सिलाई करने के बावजूद सुपरवाइज़र ने मुझे लाइन से बाहर खड़ा कर दिया। फिर मुझसे दूसरी लाइन पर काम करने के लिए कहा। वहाँ भी मैंने बड़ी जल्दी पीसों को बढ़िया तरीके से तैयार किया। लेकिन यहाँ से भी सुपरवाइज़र ने मुझे बाहर खड़ा कर दिया। थोड़ी देर बाद इस सुपरवाइज़र ने पीछे वाले यानी बैक मेकिंग वाले सुपरवाइज़र के पास इन शब्दों से ज़लील करते हुए भेज दिया कि "ऐ चल पीछे जा, सिलाई करना सीख! तेरे लिए मेरे पास काम नहीं है।"

मैं इतने सालों से सिलाई का काम करती आ रही थी। मुझे अपने हाथ की सफाई और बारीकियों से किये गये काम पर नाज़ था। लेकिन यहाँ यह सुपरवाइज़र क्यों ऐसा बोल रहा था, मुझे समझ नहीं आया। खैर, मैं पीछे वाले सुपरवाइज़र के पास गयी उसने भी मशीनों पर बिठाने, फिर खड़ा करने का अपमानजनक नाटक मुझसे करवाया। दो-तीन दिनों तक मशीनों पर बैठाने, खड़ा करने, आगे भेजने, पीछे भेजने का खेल ये मेरे साथ करते रहे। फिर मुझे पीस पर निशान लगाने के काम में लगा दिया गया।

मुझे टेलर के रूप में भर्ती किया गया था। पहचान पत्र पर भी मुझे टेलर ही लिखा गया है। लेकिन मुझे ट्रेनी का वेतन दिया गया। अपने वेतन के बारे में पूछने पर हमारे हॉल के इंचार्ज और भर्ती इंचार्ज (जिसे लोग नाहर का बन्दर कहते हैं) से जवाब मिला 'आम खाने से मतलब रखो! गुठलियाँ गिनना छोड़ दो। तुम्हें यहाँ काम करना है कि नहीं।' मज़दूरों को टाइम आफिस में जाने का अधिकार भी नहीं है। बाद में मुझे पता चला कि यहाँ अधिकतर मज़दूरों को नहीं मालूम कि उनकी तनख़्वाह कितनी है, बस एक अन्दाज़ा है कि इतनी होगी। ओवरटाइम के कितने मिले, ईएसआई, पीएफ आदि के कितने कटे – बस एक अन्दाज़ा ही लगाना पड़ता है। वेतन स्लिप के नाम पर जो पर्ची हमारे हाथ में 5-10 मिनट के लिए थमायी जाती है उसमें भी इन चीजों का कोई ब्यौरा नहीं होता। मज़दूरों के लूट-शोषण के जितने तरीके हो सकते हैं – वे सब नाहर में अपनाये जाते हैं। कारखाने में जिस तरफ नज़र उठाओ – मज़दूरों पर धक्केशाही का नज़ारा देखने और सुनने को मिलेगा।

मज़दूरों के शोषण और दमन का हर रूप ऐसा लगता है जैसे कि फोड़ा हो, जिसे छेड़ते ही मवाद बह निकलेगी। हमारी मजबूरियों, बेबसियों, हमारे आँसुओं और घुटन पर, हमारी इच्छाओं और सपनों को कुचलकर बना मालिकों और अमीरों का यह साम्राज्य इन्सानों के रहने लायक नहीं रह गया है।

– लुधियाना की एक होज़री मज़दूर

मज़दूरों में मालिक-भक्ति की बीमारी

इस बार शिवरात्रि वाली रात लुधियाना में एक बेहद दर्दनाक घटना घटी। यहाँ का एक कारखाना मालिक हर वर्ष शिवरात्रि वाले दिन "मज़दूरों के लिए" कोई न कोई कार्यक्रम करवाता है और भण्डारा लगवाता है। इस बार भी उसने ऐसा ही कार्यक्रम रखा था जिसमें उसने भोजपुरी गायक घसारी लाल को बुलाया हुआ था। अधिक भीड़ होने के कारण दुर्घटना हो गयी और करण्ट लगने के कारण तीन आदमियों की मौत हो गयी। घटना के बाद काफी मज़दूरों में कारखाना मालिक के प्रति फिक्रमन्दी छाई हुई थी, किसी को डर था कि मालिक के विरोधी उसे किसी न किसी ढंग से पुलिस केस में उलझायेंगे। किसी-किसी को उसके साथ हमदर्दी हो रही थी कि इतने अच्छे मालिक, जो मज़दूरों का इतना खयाल रखता है, के साथ भगवान ने बुरा किया है। किसी को लग रहा था कि मालिक पर जरूर किसी विरोधी ने कोई जादू-टोना करवाया है। मज़दूरों में मालिकों की भक्ति भावना का यह सिर्फ़ एक उदाहरण है। बहुत सारे मज़दूर हैं जो अक्सर अपने मालिक की प्रशंसा करते हुए नहीं थकते। मैं सोचता हूँ कि क्या कोई मालिक मज़दूरों का खयाल रख सकता है? क्या सच में मालिक मज़दूर के लिए अच्छा आदमी हो सकता है?

अब उपरोक्त घटना को ही लीजिये। अगर यह मालिक मज़दूरों का इतना ही खयाल रखता तो वह मज़दूरों को अच्छा वेतन क्यों नहीं देता? क्या उसे नहीं पता कि मज़दूर मुर्गीखानों जैसे बेहड़ों में बेहद भयंकर स्थिति में रहते हैं? क्या उसे नहीं पता कि आज के महँगाई के समय में मज़दूर अपना और अपने परिवार का पेट कम वेतन में कैसे भरता होगा? दूसरी बात, यह मालिक शिवरात्रि वाले दिन ही मज़दूरों का खयाल क्यों रखता है जबकि मज़दूरों के त्यौहार तो मई दिवस, भगतसिंह और उनके साथियों के शहीदी दिन, महान अक्टूबर क्रान्ति की वर्षगाँठ आदि हैं। ये मालिक उन दिनों के बारे में कोई जानकारी क्यों नहीं देता? इन दिनों को मनाने के लिए तो मालिक मज़दूरों को कोई छुट्टी तक नहीं देते। असल में मालिक मज़दूरों को धर्म के चक्कर में फँसाये रखने के लिए ऐसा करते हैं ताकि मज़दूरों की चेतना विकसित न हो पाए और मज़दूर चुपचाप मालिकों से अपनी लूट करवाते रहें। ऐसे मालिक वर्ष में एक दो भण्डारे, पूजा-पाठ आदि करके मज़दूरों के आगे सच्चे साबित होने का नाटक करते हैं और मज़दूर भी धर्म में अन्धी श्रद्धा होने के कारण मालिक को अच्छा आदमी समझने लगते हैं। लेकिन वे यह नहीं सोचते कि इन भण्डारों और पूजा-पाठ पर जो पैसा मालिक पानी की तरह बहाते हैं वह मज़दूरों द्वारा कारखानों में हाड़तोड़ मेहनत की लूट से आता है। मैं यह भी नहीं समझ पाता कि मज़दूर घसारी लाल जैसे गायकों को सुनने क्यों जाते हैं? पूँजीपतियों के टुकड़ों पर पलने वाले यह घटिया गीत गाने वाले लोग मज़दूरों की जिन्दगी के बारे में कोई बात नहीं करते, मज़दूरों की लूट के बारे में एक भी गीत नहीं गाते और कभी भी मज़दूरों के संघर्षों में शामिल होना तो दूर, मज़दूरों के हक में बयान तक नहीं देते। लेकिन फिर भी मज़दूर इन्हें सुनने के लिए भागे जाते हैं। हमें इन गायकों, फिल्मी अभिनेताओं आदि का भी असल चेहरा पहचानना चाहिये और ऐसों को मुँह नहीं लगाना चाहिये। इसके अलावा सिर्फ मालिक ही नहीं है जो धार्मिक त्यौहारों के समय भण्डारे, पूजा-पाठ, जागरण आदि करके मज़दूरों को मूर्ख बनाने की चाल चलते हैं। मालिकों की दलाली करने वाली बहुत सारी मज़दूर यूनियनें भी ऐसे काम करके मज़दूरों को मूर्ख बनाकर मालिकों की सेवा करती हैं। इनमें कांग्रेस, भाजपा से लेकर और चुनावी सियासत करने वाली माकपा, भाकपा जैसी तथाकथित मज़दूर पार्टियों की यूनियनें भी शामिल हैं।

मज़दूरों को मालिकों की ऐसी नौटंकियों के झाँसे में नहीं आना चाहिए। मालिक की परख करनी हो तो वेतन बढ़वाने, श्रम कानून लागू करवाने और रिहायशी सुविधाओं के लिए मालिक के मुनाफे में से हिस्सा आदि माँगें मालिक के सामने रखकर देखो। तुरन्त मालिक की अच्छाई और कल्याणकारी प्रवृति पर से मुखौटा उतर जाएगा और पूजा-पाठ करने वाले, देवी-देवताओं के भक्त मालिक के भीतर बैठा जानवर जाग उठेगा और पुलिस-शासन-प्रशासन को साथ लेकर मज़दूरों पर टूट पड़ेगा। मालिक मज़दूर के कल्याण के बारे में कभी नहीं सोच सकता। पूँजीवादी व्यवस्था की यही सच्चाई है। मालिक सिर्फ मज़दूरों की एकता के आगे झुकता है। मालिक इसी से डरता है और मज़दूरों को एकता न बनाने देने के लिए और बनी हुई एकता तोड़ने के लिए सभी चालें चलता है। मालिक द्वारा पूजा-पाठ, भण्डारे, जागरण आदि करना भी ऐसी चालों में से एक है।

– राहुल,
लुधियाना से एक मज़दूर।

पूँजी के ऑक्टोपसी पंजों में जकड़ी स्त्री मज़दूर

पूरी दुनिया में सबसे अधिक शोषण और उत्पीड़न की शिकार

कभी आप अपने मोबाइल फ़ोन या चार्जर के भीतर झाँककर देखिये। आप सोचते होंगे कि इन बारीक़ पुर्ज़ों को शायद किसी ऑटोमेटिक मशीन से जोड़ा गया होगा। आपको उन औरतों की हाड़तोड़ मेहनत और नारकीय ज़िन्दगी का अन्दाज़ा तक नहीं होगा जो तंग अँधेरी कोठरियों में बेहद कम मज़दूरी पर बारह या चौदह घण्टों तक बैठकर फ़ोन के चिप जोड़ती रहती हैं या चार्जर के तार लपेटती रहती हैं। बेंगलुरु-गुड़गाँव से लेकर अमेरिका की सिलिकॉन वैली तक कम्प्यूटर उद्योग और इलेक्ट्रॉनिक उद्योग की दुनिया में घुसकर सुख-समृद्धि के सपने देखने वाले खाते-पीते घरों के नौनिहालों को उन स्त्रियों का घुटन, अभाव और बीमारियों भरा जीवन सपने में भी नहीं दिखता होगा जो सुबह से रात तक कम्प्यूटर और विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक सामानों के बारीक़ कल-पुर्ज़ों को जोड़ने के यत्न में आँखें फोड़ती रहती हैं। सड़को-बाज़ारों में घूमते लोगों के शरीरों पर सजे फ़ैशनेबल कपड़ों पर तिरुपुर और बेंगलूरू की उन स्त्री मज़दूरों के ख़ून के छींटे नंगी आँखों से दिखायी नहीं देते, जो बर्बर शोषण-उत्पीड़न से तंग आकर आये दिन ख़ुदकुशी करती रहती हैं।

मजदूरों की मुक्ति का विचार देने वाले महान क्रान्तिकारी विचारक कार्ल मार्क्स का कहना था कि पूँजी का सारा वैभव स्त्रियों और बच्चों के सस्ते श्रम की बुनियाद पर खड़ा है। उनका यह कहना आज भी सौ फ़ीसदी सही लगता है कि "पूँजी सर से पाँव तक, पोर-पोर तक ख़ून और गन्दगी में लिथड़ी हुई है।" उन्होंने 'पूँजी' के पहले खण्ड में 1863 के लंदन का एक उदाहरण दिया है, जो उन दिनों आम बात हुआ करती थी। कपड़ों की एक प्रतिष्ठित दूकान के लिए कपड़े तैयार करने के लिए 60 लड़कियाँ मात्र दो कमरों में ठुँसी हुई रोज़ाना 16-16 घण्टे और तेज व्यवसाय के दिनों में लगातार 30-30 घण्टों तक काम करती थीं। उनके सोने के लिए लकड़ी के छोटे-छोटे सूराखनुमा केबिन थे। इनमें से एक लड़की मेरी वाल्कते काम करते-करते मर गयी थी।

अतिलाभ निचोड़ने की अन्धी हवस ने और सरकारों द्वारा श्रम क़ानूनों को ज़्यादा से ज़्यादा ढीला और काग़ज़ी बनाने की कोशिशों ने आज के पूँजीवादी उत्पादन को एक बार फिर उन्नीसवीं शताब्दी जैसा ही बर्बर और ख़ूनी बना दिया है। भारत के टेक्सटाइल और गारमेण्ट उद्योग के स्त्री मज़दूरों की स्थिति उन्नीसवीं शताब्दी के लन्दन जैसी ही बदतर है। विश्व बाज़ार में भारत के गारमेण्ट उद्योग की सफलता इसमें काम करने वाली औरतों की हड्डियाँ निचोड़ कर हासिल की गयी है। ये औरतें बहुत बुरी स्थिति में काम करती हैं और कोई भी श्रम-क़ानून इनके लिए बेमानी होता है। भारत में दिल्ली-नोएडा, गुडगाँव, मुंबई, तिरूपुर और बेंगलूरु, गारमेण्ट उद्योग के पाँच प्रमुख केन्द्र है। यहाँ लाखों स्त्रियाँ टेक्सटाइल और गारमेण्ट के विभिन्न कामों में लगी हुई हैं। कताई-बुनाई, सिलाई-कटाई, कढ़ाई, कपड़े-रंगने, बटन टाँकने, धागा काटने, प्रेस करने, पैकिंग आदि दर्जनों काम होते हैं। सभी स्त्री मज़दूरों पर काम का बहुत अधिक बोझ होता है। मशीन पर काम करने वाली स्त्रियों को एक घण्टे में 100 से 120 गारमेण्ट तक का टारगेट दिया जाता है। अक्सर तय समय में टारगेट पूरा होना असम्भव होता है। लेकिन जब तक काम ख़त्म न हो जाये तब तक कारख़ाने से बाहर वे क़दम नहीं रख सकतीं। सुपरवाइज़रों की गाली-गलौज, बदसलूकी और बात-बात पर पैसे काट लेना आम

एक रेडीमेड वस्त्र कारख़ाने में काम करती हुई सैकड़ों स्त्री मज़दूर

बात होती है। इन हालात में काम करने वाली ज़्यादातर स्त्रियाँ तरह-तरह की स्वास्थ्य समस्याओं से जूझती रहती हैं। गहरी निराशा के चलते आत्महत्या की प्रवृत्ति भी बढ़ती जा रही है। तमिलनाडु के तिरुपुर में पिछले दो वर्षों के दौरान 1500 से ज्यादा स्त्री मज़दूरों ने खुदकुशी की है। बेंगलुरु में पिछले वर्ष नवम्बर में सात टेक्सटाइल स्त्री मज़दूरों ने एक साथ ट्रेन से कटकर जान दे दी। इस तरह की आत्महत्याओं की ख़बरें अन्य जगहों से भी आती रही हैं। ऐसी नब्बे प्रतिशत से भी अधिक स्त्री मज़दूर कुपोषण और गम्भीर स्वास्थ्य समस्याओं से ग्रस्त रहती हैं। कई नमूना सर्वेक्षणों और रिपोर्टों में यह बात सामने आ चुकी है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लम्बे संघर्षों के बाद यूरोप के मज़दूरों ने बहुत सारे अधिकार हासिल किये थे। दूसरे, पश्चिम के साम्राज्यवादी देशों ने अपने उपनिवेशों की अकूत लूट के एक छोटे से भाग से अपने देश के मज़दूरों के तुष्टिकरण की प्रक्रिया शुरू की। मज़दूर आन्दोलन के भ्रष्ट नेतृत्व को ख़रीदकर भी उन्होंने अपना मक़सद पूरा किया। इधर भारत और तमाम दूसरे उपनिवेशों में राष्ट्रीय मुक्ति के साथ-साथ मज़दूर आन्दोलन भी आगे बढ़ रहा था। उनपर मज़दूर क्रान्तियों की ऐतिहासिक लहर का भी प्रभाव था। आन्दोलन के दबाव में भारत में भी अंग्रेज़ों को कुछ श्रम क़ानून बनाने पड़े। आज़ादी मिलने के बाद भारत में देशी पूँजीपतियों की सत्ता आयी जिनकी गाँठ साम्राज्यवादियों से जुड़ी थी। पूँजीवाद के विस्तार के साथ देशी-विदेशी लूट तो बढ़ती रही, फिर भी सत्ता के अस्थिर हो जाने के डर से पूँजीवादी सत्ता मज़दूरों को कुछ छूटें-राहतें देती रही। फिर सबसे बड़ा लाभ उसे मज़दूर आन्दोलन के नेतृत्व के पतित होकर बिक जाने से मिला। राजकीय और निजी क्षेत्र के बड़े उद्योगों के संगठित मज़दूरों को श्रम क़ानूनों का लाभ और ज़्यादा सुविधाएँ मिली। यह छोटी सी आबादी जुझारू संघर्षों से दूर हो गयी और तरह-तरह के, बहुसंख्यक असंगठित मज़दूरों से एकदम कट गयी। फिर दौर आया निजीकरण-उदारीकण का। संकटग्रस्त साम्राज्यवादी अपनी पूँजी का अम्बार झोंककर ग़रीब और पिछड़े देशों की सस्ती श्रमशक्ति निचोड़ने के लिए आतुर थे। ग़रीब और पिछड़े देशों के पूजीपतियों को भी अब अपना मुनाफ़ा और अधिक बढ़ाने के लिए साम्राज्यावादियों से तकनोलॉजी और पूँजी की दरकार थी। यह नया दौर लातिन अमेरिका के देशों में तो 30-35 वर्षों पहले ही शुरु हो चुका था। भारत में 1990 के बाद यह प्रक्रिया तेज़ी से आगे बढ़ी।

नयी तकनोलॉजी ने आज इस चीज़ को आसान बना दिया है कि किसी भी चीज का उत्पादन एक छत के नीचे, एक असेम्बली लाइन पर करने के बजाय, पूरी उत्पादन प्रक्रिया को कई हिस्सों में तोड़ दिया जाये। अलग-अलग पार्ट्स को बनाने-जोड़ने का काम अलग-अलग वर्कशॉपों में और यहाँ तक कि पीसरेट पर घरों पर कराया जाये। खण्ड-खण्ड में बँटे इन कामों को थोड़ी-बहुत ट्रेनिंग के बाद अकुशल-अर्द्धकुशल मज़दूर भी कर सकते थे। इन नयी प्रणालियों का लाभ यह हुआ कि बड़े पैमाने पर मज़दूर आबादी को असंगठित क्षेत्र में धकेल दिया गया, जिससे कम से कम मज़दूरी देकर आधुनिकतम (इलेक्ट्रॉनिक सामान, मोबाइल, कम्प्यूटर, वस्त्र, खिलौने, जूते, कार, जेनरेटर आदि-आदि) चीजों का उत्पादन करवाया जा सकता था। केवल असेम्बलिंग के अन्तिम चरण या कुछ जटिल चरणों के लए ही प्रशिक्षित टेकनीशियनों की एक छोटी टीम की ज़रूरत होती थी। असंगठित मज़दूर ज़्यादातर श्रम क़ानूनों के दायरे के बाहर होते हैं और उनके लिए यदि कुछ श्रम क़ानून (जैसे ठेका मज़दूरी सम्बन्धी कानून, न्यूनतम मज़दूरी, काम के घण्टे आदि से सम्बन्धित क़ानून) और सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी योजनाएँ होती भी हैं तो उनका कोई मतलब नहीं होता है। आप दिल्ली, नोएडा, गुड़गाँव के ज़्यादातर कारख़ानों और वर्कशापों में जाकर देखें तो पता चलेगा कि अधिकतर ठेका या कैजुअल मज़दूरों और अप्रेण्टिसों को दिहाड़ी मज़दूरी के अतिरिक्त कोई भी सुविधा नहीं मिलती। साप्ताहिक छुट्टी भी नहीं होती (यानी उस दिन की पगार नहीं मिलती)। सिंगल रेट पर ही ओवरटाइम करना पड़ता है। उनके पास पगार की स्लिप या ऐसा कोई प्रमाण नहीं होता कि वे अपने को किसी कारख़ाना, वर्कशॉप या ठेकेदार का मज़दूर सिद्ध कर सकें। ऐसे में न तो उनका ई.एस.आई. कार्ड बन पाता है, न वे मज़दूरों के लिए घोषित आवास, बीमा पेंशन या दुर्घटना की स्थिति में मुआवज़े जैसी किसी सुविधा के हक़दार हो पाते हैं।

कृषि क्षेत्र को छोड़ भी दें तो शहरी उद्योगों और व्यापारिक प्रतिष्ठानों में लगे मज़दूरों की नब्बे प्रतिशत आबादी इसी श्रेणी में आती है। और इनके सबसे निचले पायदान पर स्त्री मज़दूर आती हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के एशिया-अफ़्रीका-लातिन अमेरिका जैसे देशों की ओर कूच करने का मुख्य कारण है यहाँ का कम वेतन। अमेरिका, फ़्रांस, जर्मनी या इंग्लैण्ड के मुक़ाबले वही काम मेक्सिको, ब्राज़ील, चीले, हाइती दक्षिण अफ़्रीका, भारत, चीन, बंगलादेश, पाकिस्तान, फिलिप्पींस, मलेशिया जैसे देशों में एक चौथाई से लेकर दसवें हिस्से तक कम मज़दूरी देकर कराया जा सकता है। जनतान्त्रिक चेतना की कमी के कारण यहाँ की सरकारें श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा पर नाममात्र ख़र्च करती हैं और कम्पनियों को भी अन्धेरगर्दी की इजाज़त देती हैं। जो क़ानून हैं, वे भी महज़ काग़ज़ों पर ही सीमित रह जाते हैं।

सबसे कम वेतन पर, सबसे कठिन परिस्थितियों में सबसे उबाऊ, थकाऊ और बारीक़ काम भारत जैसे पिछड़े पूँजीवादी देशों में असंगठित स्त्री मज़दूरों द्वारा कराये जाते हैं। अस्सी के दशक में ताइवान, हाइती, मेक्सिको जैसे देशों में इस प्रक्रिया ने ज़ोर पकड़ा। नब्बे के दशक से भारत, चीन, फिलिप्पींस, बंगलादेश, इण्डोनेशिया, मलयेशिया जैसे देशों में भी ऐसी ही प्रवृत्ति प्रधान बन गयी। केवल खिलौने, जींस, माइक्रोप्रोसेसर, हार्डवेयर आदि ही नहीं वॉलमार्ट जैसी ख़ुदरा व्यापार की दैत्याकार कम्पनियाँ और एग्रीबिज़नेस में लगी कम्पनियाँ भी फलों और खाद्य पदार्थों की छँटाई, बिनाई, पैकिंग आदि में मुख्यत: स्त्री कामगारों को लगाने लगीं।

महज़ कुछ आँकड़ों की रोशनी में पूरी दुनिया और भारत की स्त्री मजदूरों की स्थिति को समझा जा सकता है। पूरी दुनिया में स्त्रियों की मज़दूरी पुरुषों के मुक़ाबले 17 प्रतिशत कम है। भारत में यह 23 प्रतिशत कम है। पूरी दुनिया में काम के कुल घण्टों का दो-तिहाई स्त्रियाँ करती हैं। दुनिया में होने वाली कुल आमदनी का मात्र 10 प्रतिशत स्त्रियों को मिलता है। दुनिया में स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले कुल काम के दो-तिहाई के लिए कोई भुगतान नहीं मिलता। ग़रीबी में रहने वाले लोगों में 80 प्रतिशत स्त्रियाँ हैं।

अब भारत की स्त्री मज़दूरों की चर्चा पर वापस लौटते हैं। 'नेशनल काउंसिल ऑफ अप्लाइड इकोनॉमी रिसर्च' के अनुसार भारत में 97 प्रतिशत स्त्री मज़दूर असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र में काम करती हैं। इन स्त्रियों के लिए ट्रेड यूनियन एक्ट (1926), न्यूनतम मज़दूरी क़ानून (1948), मातृत्व लाभ क़ानून (1961) और बहुतेरे ऐसे क़ानून हैं, जो कहीं भी लागू नहीं होते। इनमें ऐसे सुरक्षा क़ानून भी शामिल हैं जो ज़िला प्रशासन के पास पंजीकरण कराये जाने पर मज़दूरों को स्वास्थ्य और मातृत्व लाभ सहित कई सुविधाएँ देता है, लेकिन यह भी सिर्फ़ काग़ज़ पर ही। ज़्यादा मालिक स्त्री मज़दूरों को अपना मुलाज़िम होने का कोई सबूत ही नहीं देते। ढेर सारी स्त्रियाँ कारख़ानों में भी पीस रेट पर ही काम करती हैं। काम का एक बहुत बड़ा हिस्सा स्त्रियाँ घरों पर लाकर पीस रेट पर करती हैं। ऐसे 70-80 प्रकार के काम दिल्ली की झुग्गी बस्तियों में स्त्रियाँ करती हैं। औसतन 8-10 घण्टे काम करके भी ये स्त्रियाँ 30 से 50 रुपये तक की कमाई ही कर पाती हैं। विडम्बना यह है कि सरकारी परिभाषा के मुताबिक़ घरों पर पीस रेट पर किया जाने वाला यह काम मज़दूरी की श्रेणी में आता ही नहीं। इसे स्वरोज़गार माना जाता है। इन स्त्रियों के स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा या दुर्घटना के लिए सरकार या मालिकों की कोई ज़िम्मेदारी नही होती। इधर सरकारी और विदेशी सहायता प्राप्त बहुत सारे एन.जी.ओ. कुकुरमुत्ते की तरह पनपे हैं जो

(पेज 11 पर जारी)

मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी और मार्क्सवाद को विकृत करने का गन्दा, नंगा और बेशर्म संशोधनवादी दस्तावेज़

(पेज 1 से आगे)

लिए लड़ने में ख़र्च हो जाती है। अगर कहीं मज़दूरों के बीच उनकी थोड़ी-बहुत मौजूदगी है भी तो वे उसी अर्थवाद और ट्रेडयूनियनवाद पर ज़्यादा गर्म, जुझारू और समझौताविहीन तरीक़े से अमल करते हैं, जिस पर कोई भी बुर्जुआ या संशोधनवादी यूनियन करती है। ऐसे में, हम मज़दूरों के बीच माकपा की बीसवीं पार्टी कांग्रेस में पास किये गये विचारधारात्मक प्रस्ताव के आलोचनात्मक विवेचन के जरिये उसके असली ग़द्दार चरित्र को बेनक़ाब करेंगे।

●

भाकपा ने मार्च में बिहार की राजधानी पटना में और माकपा ने अप्रैल में केरल के कोझिकोड में अपनी बीसवीं कांग्रेस आयोजित की। केरल और पश्चिम बंगाल में माकपा-नीत वाम मोर्चे की हार के बाद यह इन पार्टियों की पहली कांग्रेस थी। भाकपा राष्ट्रीय बुर्जुआ राजनीति में माकपा का हाथ पकड़ कर ही चल रही है इसलिए हम यहाँ भाकपा की कांग्रेस में पेश दस्तावेज़ों का विवेचन करने के बजाय सीधे माकपा की कांग्रेस के दस्तावेज़ों का विवेचन करेंगे, जो ज़्यादा बारीक़ और ख़तरनाक़ तरीक़े और भाषा में उसी संशोधनवादी उद्देश्य को आगे बढ़ाने का काम करते हैं, जिनपर आने वाले समय में भाकपा को भी अमल करना है। माकपा की बीसवीं कांग्रेस में पेश दस्तावेज़ों को पढ़कर जो बात सबसे पहले दिमाग़ में आती है वह यह है कि पश्चिम बंगाल और केरल में वाम मोर्चे की हार को बस एक तथ्य के रूप में पेश कर दिया गया है। कहीं पर भी इन हारों के कारणों का कोई विस्तृत विश्लेषण नहीं पेश किया गया है। माकपा के पश्चिम बंगाल के चुनावों में हार और उसके 34 वर्ष के शासन के अन्त का प्रमुख कारण था बंगाल के मँझोले और निचले मँझोले किसानों के विशालकाय वर्ग का माकपा से अलग हो जाना। यह वर्ग माकपा की भूमि नीति और विस्थापन के मुद्दे पर नाराज़ था। सिंगूर और नन्दीग्राम में माकपा की सरकार ने जिस तरह से खुलेआम कॉरपोरेट पूँजी के पक्ष में भूमि अधिग्रहण करने के लिए किसानों और ग्रामीण ग़रीबों का बर्बर दमन किया, उससे पूरे राज्य में मँझोले, निचले मँझोले और ग़रीब किसानों, भूमिहीन मज़दूरों और ग्रामीण ग़रीबों के वर्ग माकपा की सरकार से अलग हो गये। ग़ौरतलब है कि माकपा ने अपना शासन आने के बाद ऑपरेशन बरगा के तहत बरगादारों (काश्तकार किसानों) के पूरे वर्ग को बड़े ज़मींदारों द्वारा ज़मीन से बेदख़ल किये जाने से बचाया और उन्हें उत्पाद के उपयुक्त हिस्से का स्वामी बनाया। 1978 में शुरू हुआ यह भूमि सुधार 1980 के दशक के मध्य में समाप्त हुआ। इसके समाप्त होने तक मँझोले और निचले मँझोले किसानों का एक पूरा वर्ग तैयार हुआ जो पिछले चुनावों में हार तक माकपा का परम्परागत सामाजिक आधार बना रहा। इनमें से कुछ किसान समय के साथ धनी किसानों में तब्दील हो गये जो अभी भी माकपा का समर्थन करते हैं। लेकिन जो नीचे रह गये या और नीचे चले गये वे भूतपूर्व माकपा सरकार की नवउदारवादी नीतियों, कॉरपोरेट पूँजी के हाथ बिक जाने और भूमि अधिग्रहण के लिए दमन-उत्पीड़न का सहारा लेने के चलते उससे कट गये। इसी पूरे वर्ग को तृणमूल कांग्रेस ने नन्दीग्राम और सिंगूर के आन्दोलन के दौरान समेटा, जिसमें कि भाकपा (माओवादी) ने भी एक समर्थनकारी भूमिका निभायी। बहरहाल, बीते चुनावों में माकपा की हार का सबसे बड़ा कारण इस विशालकाय वर्ग का उससे कटना और नन्दीग्राम और सिंगूर के आन्दोलनों के कारण शहरी मध्यवर्ग और बुद्धिजीवियों के एक हिस्से में उसका अलग-थलग पड़ जाना था। पश्चिम बंगाल में माकपा मज़दूरों के बीच भी लम्बे समय से अलग-थलग पड़ने की प्रक्रिया में थी। यह पूरी प्रक्रिया बुद्धदेव भट्टाचार्य के मुख्यमन्त्रित्व काल में असाधारण तेज़ी से बढ़ी। बुद्धदेव का हड़ताल-विरोधी, मज़दूर-विरोधी रवैया माकपा को संगठित मज़दूरों के भी एक अच्छे-ख़ासे हिस्से में हिक़ारत का पात्र बना रहा था। असंगठित मज़दूरों के प्रति तो बुद्धदेव की सरकार का रवैया शुरू से अन्त तक दमनकारी रहा ही था। ज्योति बसु के काल में भी यह प्रक्रिया जारी थी, लेकिन बुद्धदेव ने इसे निपट नंगई के साथ आगे बढ़ाया। बुद्धदेव ने अपने शासन के दौरान ही एक बार यहाँ तक कह दिया कि मज़दूरों को हड़ताल नहीं करनी चाहिए क्योंकि इससे आर्थिक विकास और वृद्धि प्रभावित होती है! आगे उन्होंने कहा कि वर्ग संघर्ष का ज़माना अब लद गया है और मज़दूर वर्ग को अब वर्ग सहयोग की नीति पर अमल करना चाहिए! हालाँकि, अभी हाल ही में पश्चिम बंगाल में माकपा के राज्य सम्मेलन में बुद्धदेव भट्टाचार्य ने अपने इन कथनों पर गोलमाल करने की कोशिश की, लेकिन इसके बावजूद इतिहास संशोधनवाद के असली चरित्र और मज़दूर वर्ग से उसकी घृणित ग़द्दारी के तौर पर बुद्धदेव के इन कथनों को हमेशा याद रखेगा।

कुल मिलाकर, कॉरपोरेट पूँजी की लूट को सुचारू बनाने के लिए भूतपूर्व माकपा सरकार पश्चिम बंगाल में जिस तरह से नंगे तौर पर अपने पूँजीवादी चरित्र को उजागर कर रही थी, उससे बहुसंख्यक मज़दूर और ग़रीब और निम्न मध्यम किसान आबादी में उसका अलग-थलग पड़ना लाज़िमी था और इसी के फलस्वरूप उसकी विधानसभा चुनावों में शर्मनाक पराजय हुई। लेकिन ताज्जुब की बात यह है कि माकपा कांग्रेस में पास विचारधारात्मक मुद्दों पर प्रस्ताव और राजनीतिक मुद्दों पर प्रस्ताव में इस हार के कारणों का कहीं कोई विस्तृत मूल्यांकन नहीं है। बस तथ्यत: इस बात को कह दिया गया है कि ये हारें पार्टी के लिए एक झटका थीं और इनसे उबरने के लिए एक वाम जनवादी विकल्प के निर्माण के लिए पार्टी को काम करना होगा!

कांग्रेस के पहले माकपा के सचिव प्रकाश करात ने एक बुर्जुआ इतिहासकार रामचन्द्र गुहा के एक लेख का जवाब देते हुए कहा था कि नन्दीग्राम और सिंगूर में ग़लती पार्टी की भूमि नीति आदि की नहीं थी, बल्कि ग़लती बस यह थी कि पार्टी ने एक ग़लत जगह का चुनाव कर लिया था। "कॉमरेड" करात ने जनता के ज्ञानचक्षु खोलते हुए यह खुलासा किया कि स्थानीय प्रतिनिधि निकायों के स्तर पर इन सभी जगहों पर तृणमूल के लोग सत्तासीन थे। इसलिए नन्दीग्राम और सिंगूर में जो कुछ हुआ वह वास्तव में ममता बनर्जी की साज़िश थी! इस तरह के विश्लेषण के बारे कुछ कहना अपना मज़ाक़ उड़वाने जैसा ही होगा! वैसे, करात महोदय को यह भी बताना चाहिए कि अगर नन्दीग्राम और सिंगूर में माकपा ने बस जगह का चुनाव ग़लत किया था और उसकी नीति बिल्कुल दुरुस्त थी तो नन्दीग्राम और सिंगूर के मुद्दे के बाद पार्टी ने इस मुद्दे पर माफ़ी क्यों माँगी थी और ग़लती का स्वीकार क्यों किया था? माकपा ने तो पश्चिम बंगाल में पंचायत चुनावों के पहले नाराज़ किसानों को मनाने के लिए यहाँ तक एलान कर दिया था कि वह जल्दी ही ऑपरेशन बरगा-2 शुरू करेगी! लेकिन ज़ाहिर है कि ऐसे फ़रेबों के चक्कर में जनता नहीं पड़ने वाली थी। नतीजतन, उसने पहले माकपा को पंचायत चुनावों में धूल चटायी और उसके बाद विधानसभा चुनावों में भी उसकी तबीयत हरी कर दी! अब ज़ाहिर है कि माकपा अपने कांग्रेस में इस पूरे अपमानजनक प्रकरण पर विश्लेषण रखती भी तो क्या? अगर ऐसा करने का वह प्रयास भी करती तो प्रकाश करात, सीताराम येचुरी आदि को अपने ही मुँह पर इतने तमाचे जड़ने पड़ते कि माकपा के काडर गिनती भूल जाते! इसलिए ज़ाहिर है कि मूल और ठोस मुद्दों का विश्लेषण करने के बजाय माकपा के नेतृत्व ने कांग्रेस में पेश किये गये अपने विचारधारात्मक प्रस्ताव में बड़ी-बड़ी विचारधारात्मक तोपें दागी हैं! पूरे प्रस्ताव की भाषा को ख़ूब गर्म रखा गया है, और मार्क्सवाद-लेनिनवाद, लेनिन, माओ आदि का इतना नाम लिया गया कि माकपा के ईमानदार काडरों को लगे कि पार्टी नेतृत्व शायद क्रान्तिकारी मार्क्सवाद की तरफ़ लौट रहा है! लेकिन प्रस्ताव का अन्त होते-होते, ऐसी सभी महान आशाओं का भी दुखद अन्त हो जाता है। प्रस्ताव का अन्त होते-होते माकपा अपनी संशोधनवादी काऊत्स्कीपन्थी ग़द्दारी की भाषा पर वापस लौट आती है। यह देखना दिलचस्प होगा कि माकपा ने अपने प्रस्तावों में किस कलात्मक चतुराई के साथ ढोंग-पाखण्ड किया है और मज़दूर वर्ग से अपनी ग़द्दारी को सारी कारीगरी के बावजूद वह ढँकने में कामयाब नहीं हो पायी है।

●

माकपा ने कोझिकोड कांग्रेस में जो विचारधारात्मक प्रस्ताव पेश किया है वह क़रीब 54 पेज लम्बा है! इसकी प्रस्तावना के दूसरे बिन्दु में ही माकपा ने समाजवाद की अपनी समझदारी को नंगा कर दिया है। प्रस्तावना के बिन्दु 1.2 में माकपा की 1992 में हुई चौदहवीं कांग्रेस की याद दिलायी गयी है और बताया गया है कि 1990 में सोवियत संघ में समाजवाद के पतन के बाद विश्व भर में वर्ग शक्ति सन्तुलन साम्राज्यवाद के पक्ष में झुक गया! इसका अर्थ है कि माकपा 1953 में स्तालिन की मृत्यु और 1956 में सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की संशोधनवादी बीसवीं कांग्रेस के बाद के पूरे दौर को भी समाजवाद का दौर मानती है। इस पूरे दौर में सोवियत संघ को वह साम्राज्यवादी देश के रूप में नहीं देखती है! जबकि 1956 से 1990 के पूरे दौर में सोवियत संघ संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा में उलझा हुआ था। पूर्वी यूरोप से लेकर अफ़ग़ानिस्तान और अफ़्रीका के कई देशों में सामाजिक साम्राज्यवादी सोवियत संघ ने दर्ज़नों बार नग्न रूप में साम्राज्यवादी हस्तक्षेप किया। स्तालिन के बाद के दौर में सोवियत संघ में पूँजीवाद के वापस लौट आने की सच्चाई को माकपा नज़रन्दाज़ कर देती है। 1956 के बाद ख्रुश्चेव ने शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व (यानी, दुनिया भर में सोवियत संघ के "समाजवाद" और संयुक्त राज्य अमेरिका की चौधराहट में पूँजीवाद के शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व), शान्तिपूर्ण संक्रमण (यानी, सर्वहारा क्रान्ति के बिना ही शान्तिपूर्ण और संसदीय रास्ते से समाजवाद के स्थापित होने) और शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता का संशोधनवादी सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इसके साथ ही सोवियत संघ की संशोधनवादी पार्टी ने मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धान्तों से अपना नाता तोड़ लिया, लेनिन के राज्य और क्रान्ति की थीसिस को नकार दिया और मज़दूर वर्ग के साथ ऐतिहासिक ग़द्दारी को सैद्धान्तिक जामा पहना दिया। माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने सोवियत संघ की संशोधनवादी पार्टी के साथ 'महान बहस' के दौरान सोवियत पार्टी की ग़द्दारी और मार्क्सवाद से उसके प्रस्थान को उजागर किया और दिखलाया कि सोवियत संघ की पार्टी अब एक पूँजीवादी पार्टी बन चुकी है। लेकिन माकपा को इस पूरे प्रकरण के बारे में अपने पूरे विचारधारात्मक दस्तावेज़ में कुछ भी नहीं कहना है। और कहे भी क्यों! माकपा तो शुरू से ही ख्रुश्चेवपन्थी ही रही है। इसलिए मार्क्सवादी शब्दावली में की गयी अपनी तमाम लफ़्फ़ाजी के बावजूद उसका मज़दूर वर्ग-विरोधी चरित्र उजागर हो ही जाता है। लेकिन बेशर्मी की इन्तहाँ तो तब हो जाती है जब माकपा इस दस्तावेज़ में यह दावा करती है कि वह भाकपा के संशोधनवाद से संघर्ष करते हुए ही पैदा हुई थी! अगर वह 1990 तक सोवियत संघ को समाजवादी मानती है, तो कोई भी यह सोचने को मजबूर हो जाता है कि आख़िर भाकपा किस तरह से संशोधनवादी है, और माकपा क्यों संशोधनवादी नहीं है!

इसके बाद बिन्दु 1.5 में माकपा नेतृत्व कहता है कि 1968 में उसने वामपन्थी दुस्साहसवाद का सामना किया। निश्चित रूप से, यहाँ इशारा नक्सलबाड़ी विद्रोह की तरफ़ है। निश्चित रूप से, नक्सलबाड़ी विद्रोह वामपन्थी दुस्साहसवाद का शिकार हो गया। लेकिन माकपा नेतृत्व यह बात गोल कर जाता है कि नक्सलबाड़ी विद्रोह वास्तव में एक क्रान्तिकारी किसान विद्रोह के रूप में शुरू हुआ था! माकपा नेतृत्व यह सच्चाई भी छिपा जाता है कि इस आन्दोलन के वामपन्थी दुस्साहसवाद के गड्ढे में जाने के बावजूद इसका एक प्रमुख मुद्दा माकपा के संशोधनवाद का नकार करना था। माकपा का नेतृत्व यह सच्चाई भी निगल जाता है कि माकपा के भीतर ही एक अन्तर्पार्टी संशोधनवाद विरोधी समिति अस्तित्व में आयी थी और देश के अन्य हिस्सों में भी माकपा के भीतर से ही ऐसी क्रान्तिकारी राजनीतिक धाराएँ पैदा हुईं जो चारू मजुमदार के वामपन्थी दुस्साहसवाद के पक्ष में नहीं खड़ी हुईं, लेकिन उन्होंने माकपा के संशोधनवाद को भी नकार दिया। इन धाराओं की भारतीय क्रान्ति की मंज़िल की समझदारी पर हम सवाल खड़ा कर सकते हैं, लेकिन कोई यह नहीं कह सकता कि उन्होंने माकपा की ग़द्दारी से अपने आपको अलग नहीं किया। यह सारे तथ्य छिपाते हुए माकपा नेतृत्व इस दस्तावेज़ में भाकपा के रूप में संशोधनवाद और नक्सलबाड़ी आन्दोलन के रूप में "वामपन्थी" दुस्साहसवाद के ख़िलाफ़ "संघर्ष" करने के लिए नंगई भरे पाखण्ड के साथ अपना गाल बजाता है और यह दावा करता है (बिन्दु 1.7) कि अपनी सही लाइन के कारण ही माकपा देश की सबसे बड़ी वामपन्थी पार्टी बन गयी! यानी कि बड़े होने को सही होने के प्रमाण के रूप में पेश किया गया है। अगर बड़ा होना सही होने की निशानी है तो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को सही क्यों न मान लिया जाये? अगर बड़ा होना ही सही होना है तो काऊत्स्की के नेतृत्व में जर्मन सामाजिक जनवादी पार्टी को भी माकपा को खुले तौर पर सही मानना चाहिए, जो कि क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के पैदा होने के बाद भी सबसे बड़ी "वामपन्थी" पार्टी बनी रही! माकपा का टुच्चा तर्क आपके सामने है!

इसके बाद अगले खण्ड ('विश्वीकरण के दौर में साम्राज्यवाद की कार्यप्रणाली') में यह दस्तावेज़ संशोधनवादी दोगलेपन के सारे कीर्तिमान ध्वस्त करते हुए यह दावा करता है कि साम्राज्यवाद के बारे में लेनिन का सिद्धान्त अभी भी सही है (बिन्दु 2.4)! लेकिन इसके बाद वह जो सिद्धान्त प्रतिपादित करता है वह वास्तव में काऊत्स्की का अतिसाम्राज्यवाद का लेनिनवाद-विरोधी सिद्धान्त है! माकपा नेतृत्व बिन्दु 2.6 में कहता है कि आज के दौर में वैश्विक वित्तीय पूँजी ने प्रतिस्पर्द्धा को कम कर दिया है और

(पेज 6 पर जारी)

मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी और मार्क्सवाद को विकृत करने का संशोधनवादी दस्तावेज़

(पेज 5 से आगे)

वह किसी एक राष्ट्र-राज्य के हितों के लिए नहीं बल्कि अन्तरराष्ट्रीय साम्राज्यवाद के लिए काम करती है। यानी कि साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा और विश्व के पुनर्विभाजन के लिए साम्राज्यवादी युद्ध की स्थिति नहीं है; ज़ाहिर है, इसलिए लेनिन ने जिस रूप में क्रान्तिकारी परिस्थिति पैदा होने की उम्मीद की थी, वह अब नहीं हो सकता है; इससे क्या नतीजा निकलता है? इससे यह नतीजा निकलता है कि अब बल प्रयोग के साथ सर्वहारा क्रान्ति सफल नहीं हो सकती और शान्तिपूर्ण तरीक़े से ही समाजवाद की स्थापना के बारे में सोचा जा सकता है! यही तो काऊत्स्की की थीसिस थी! लेकिन इसे लेनिन के मत्थे मढ़ दिया गया है! अन्त में, बिन्दु 2.10 में बस इतना जोड़ दिया गया है कि साम्राज्यवादी विश्व फिर से प्रतिस्पर्द्धा में पड़ सकता है, लेकिन यह भी कह दिया गया है कि यह प्रतिस्पर्द्धा सिर्फ़ मुद्रा युद्धों का रूप लेगी। यह सच है कि साम्राज्यवाद के भूमण्डलीकरण की मंज़िल में विश्व युद्ध जैसी स्थिति के पैदा होने की उम्मीद कम है। लेकिन यह भी सच है, और इसके समकालीन विश्व में ही प्रमाण मौजूद हैं, कि साम्राज्यवाद के मुद्रा युद्ध क्षेत्रीय और महाद्वीपीय साम्राज्यवादी युद्धों का रूप लेंगे! क्या माकपा नेतृत्व भूल गया है कि सद्दाम हुसैन पर अमेरिका के हमले का कारण जनसंहार के हथियार नहीं थे, बल्कि सद्दाम हुसैन द्वारा अपने विदेशी मुद्रा भण्डार का वैविध्यीकरण था? क्या हम भूल गये कि इराक़ को जिस बात की सज़ा दी गयी वह यह थी कि उसने अमेरिका की डावाँडोल अर्थव्यवस्था के ख़िलाफ़ एक क़दम उठा लिया था? क्या प्रकाश करात को याद नहीं कि इराक़ में जो साम्राज्यवादी हमला हुआ उसका वास्तविक कारण मुद्रा युद्ध ही था? लेकिन माकपा को तो किसी भी तरह काऊत्स्की की अतिसाम्राज्यवादी थीसिस पर लेनिन का नाम चिपका कर अपने संशोधनवाद को सही साबित करना है। इसलिए, इस क़िस्म की राजनीतिक नटगीरी करना उसकी मजबूरी है!

इसके बाद माकपा का विचारधारात्मक दस्तावेज़ मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की एक पैरोडी तैयार करता है! बिन्दु 2.13 में हमें बताया जाता है कि नवउदारवादी नीतियों से विकासशील देशों में छोटे और मँझोले उद्योग-धन्धे तबाह होते हैं और विकसित देशों में भी आउटसोर्सिंग के ज़रिये विऔद्योगिकीकरण होता है! अब यह तो प्रकाश करात ही बता सकते हैं कि औद्योगिक उत्पादन हो कहाँ रहा है! विकसित देशों में भी उद्योग तबाह हो रहे हैं और विकासशील देशों में भी उद्योग तबाह हो रहे हैं। आख़िर विकसित देश आउटसोर्सिंग करके उद्योग को भेज कहाँ रहे हैं? करात महोदय के अनुसार शायद चाँद पर! विकासशील देशों का पूँजीपति वर्ग अपनी स्वायत्तता खोकर लगातार विश्व साम्राज्यवाद का पार्टनर बनता जा रहा है (बिन्दु 2.15)! इसका माकपाई विकल्प क्या है? नेहरू के दौर में जिस तरह से देश के पूँजीपति वर्ग ने अपनी "स्वायत्तता" बरक़रार रखी थी, वैसे ही अभी भी रखी जानी चाहिए! माकपा उस दौर को लेकर भावुक हो जाती है! साफ़ है, माकपा की समझदारी यहाँ पर एक राज्य इज़ारेदार पूँजीवाद और कल्याणवाद की हिमायत करने की है। लेकिन अफ़सोस कि वह दौर अब लौट नहीं सकता; वह भारतीय पूँजीवाद के विकास का एक ख़ास दौर था, और उस प्रकार की सापेक्षिक "स्वायत्तता" की भारत के पूँजीपति वर्ग को भूमण्डलीकरण के दौर में ज़रूरत नहीं है। बल्कि कहना चाहिए कि पूरे विश्व में किसी भी देश के पूँजीपति वर्ग को अब इसकी ज़रूरत नहीं है। लेकिन माकपा उस दौर के बीत जाने पर अपने आँसुओं को रोक नहीं पा रही है!

इसके बाद बिन्दु 2.16 में माकपा कहती है कि भूमण्डलीकरण के इस दौर में साम्राज्यवादी पूँजी ने "आदिम" संचय की प्रक्रिया नये सिरे से शुरू कर दी है जिसके तहत 1950 से लेकर 1990 के बीच आज़ाद हुए देशों में किसानों, जनजातियों और ग़रीब मेहनतकश आबादी को उसकी जगह-ज़मीन से उजाड़ा जा रहा है। साम्राज्यवादी पूँजी देशी पूँजीपति वर्ग के साथ मिलकर दुनिया के उन कोनों में प्रविष्ट हो रही है, जहाँ अभी तक उसकी मौजूदगी नहीं थी, या कम थी। यह बात तो सच है! लेकिन ऐसे में माकपा से पूछना होगा कि यही काम तो वह भी नन्दीग्राम और सिंगूर में कर रही थी! इसके बारे में उसका क्या ख़्याल है? अगर वह काम कांग्रेस और भाजपा की सरकारें करें तो ग़लत है, लेकिन अगर माकपा की सरकार करे तो सही है! ज़ाहिर है, कि माकपा का दोगलापन उसके विचारधारात्मक दस्तावेज़ में ही बार-बार निकलकर सामने आ जा रहा है! माकपा नेतृत्व आगे हमारा ज्ञानवर्द्धन करते हुए कहता है कि आदिम संचय की इस प्रक्रिया के कारण पूँजीवादी राज्य ज़्यादा से ज़्यादा ग़ैर-जनवादी होता जा रहा है; कानून बनाने की पूरी जनवादी प्रक्रिया को कमज़ोर किया जा रहा है और उस पर से जनता का नियन्त्रण ख़त्म हो गया है! क्या माकपा का यह विश्वास है कि भारत के संसद के सुअरबाड़े में जो क़ानून बनाने की प्रक्रिया चलती है, उस पर जनता का कोई नियन्त्रण है? क्या माकपा यह मानती है कि सिंगूर और नन्दीग्राम के दौरान माकपा की सरकार ने जो कुछ किया वह दमनकारी, उत्पीड़नकारी और ग़ैर-जनवादी नहीं था? क्या उस पूरी प्रक्रिया में माकपा की सरकार जनता की आकांक्षाओं के अनुसार चल रही थी? क्या जनता का उस पर कोई नियन्त्रण था? स्पष्ट है, कि यहाँ भी माकपा नेतृत्व एक सैद्धान्तिक लफ़्फ़ाजी कर रहा है। एक जगह तो यह लफ़्फ़ाजी यहाँ तक पहुँच जाती है जिसमें माकपा नेतृत्व ग़लती से यह मान बैठता है कि बुर्जुआ राज्य वास्तव में बुर्जुआ वर्ग की तानाशाही हो सकता है! लेकिन फिर भी माकपा का मानना है कि संसद में बहुमत के जरिये इस राज्यसत्ता पर सर्वहारा वर्ग काबिज़ हो सकता है! ऐसा विचारधारात्मक द्रविड़ प्राणायाम तो प्रकाश करात और सीताराम येचुरी जैसे लोग ही कर सकते हैं!

अगले खण्ड ('नवउदारवादी विश्वीकरण की अवहनीयता और पूँजीवादी संकट') में माकपा नेतृत्व फरमाता है कि पूँजीवाद को सुधारा नहीं जा सकता क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था की वास्तविक बुराई पूँजीवादी उत्पादन के तरीक़े में ही मौजूद होती है! लेकिन साथ ही माकपा के अनुसार जनवादी कार्यभार और समाजवाद की स्थापना शान्तिपूर्ण तरीक़े से ही होनी चाहिए! अब आप ख़ुद फ़ैसला करें कि ऐसा कैसे हो सकता है! लेनिन ने बताया था कि सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ सत्ता पर क़ब्ज़ा नहीं करता बल्कि उसका ध्वंस करता है। बुर्जुआ सत्ता पर संसद में बहुमत के जरिये कब्ज़ा करके कभी भी सर्वहारा सत्ता की स्थापना नहीं हो सकती, क्योंकि बुर्जुआ राज्यसत्ता को सुधारा नहीं जा सकता और उसका वर्ग चरित्र सर्वहारा नहीं बनाया जा सकता। यहाँ आप माकपा की कलाबाज़ी को देख सकते हैं! तर्क को स्वीकार किया गया है कि पूँजीवाद को सुधारा नहीं जा सकता, लेकिन उसके नतीजे को नकार दिया गया है, यानी कि, इस असुधारणीयता के चलते ही सर्वहारा वर्ग को पूँजीपति वर्ग की राज्य सत्ता को चकनाचूर कर अपनी क्रान्तिकारी सर्वहारा सत्ता की स्थापना करनी होगी! माकपा नेतृत्व की "बहादुरी" की उस समय दाद देनी पड़ती है जब बिन्दु 3.1 में वह कहता है कि हमें इस सामाजिक जनवादी झूठ को नकार देना चाहिए कि पूँजीवाद को सुधारा जा सकता है! लेकिन तब दिमाग़ में यह भी सवाल पैदा होता है कि माकपा स्वयं हमेशा इसी बात का नुस्ख़ा तो सुझाती है कि पूँजीवादी राज्य अगर कल्याणकारी नीतियों अपना ले, अगर वह घरेलू माँग को बढ़ाकर रोज़गार पैदा करे, और अगर वह अल्पउपभोग को समाप्त कर दे तो सबकुछ ठीक हो जायेगा! अब इसे सुधारवाद न कहा जाय तो क्या कहा जाय? इसका जवाब भी करात व येचुरी जैसे नट ही दे सकते हैं! बिन्दु 3.4 व 3.5 में अपने सुधारवाद को माकपा खोलकर रख देती है। हमें बताया जाता है कि पूँजीवाद मानव संसाधनों में निवेश न करके तकनोलॉजी में निवेश करता है जिससे कि बेरोज़गारी पैदा होती है, अल्पउपभोग होता है, जनता की क्रय क्षमता घटती है और संकट पैदा होता है। यानी कि सवाल निवेश के स्थान का है न कि उत्पादन के साधनों के सामूहिक मालिकाने का। ऐसा पूँजीवाद जिसमें राज्य के हाथ में बड़े पैमाने के उद्योग हों और वह कल्याणकारी नीतियों में निवेश करता हो और जनता के लिए रोज़गार पैदा करके क्रय क्षमता का व्यापक विस्तार करता हो, वह अगर उत्पादन के साधनों के मालिकाने को सामूहिक न करे, राजनीतिक निर्णय लेने की प्रक्रिया मज़दूर वर्ग के हाथ न सौंपे, वह अगर उत्पादन से लेकर वितरण तक मज़दूर वर्ग का नियंत्रण न भी स्थापित करे तो वह स्वीकार्य है! पर यह मार्क्सवाद तो नहीं है! यह तो हॉब्सन के अल्पउपभोगवाद और काउत्स्की के सामाजिक-जनवाद की लस्सी है! माकपा बताती है कि अगर इस लस्सी को पिया जाय तो पूँजीवाद अपने संकट से मुक्त हो सकता है! इसलिए वास्तव में माकपा जो कर रही है, वह एक सर्वहारा क्रान्ति की रणनीति सुझाना नहीं है, बल्कि एक बेहतर, सुधरे हुए, कल्याणकारी और राज्य इज़ारेदार पूँजीवाद का मॉडल सुझाना है, जिसे माकपा जैसा मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी करने वाले सामाजिक जनवादियों, काऊत्स्कीपन्थियों का गिरोह ही लागू करवा सकता है! हालाँकि, पूँजीवाद की नैसर्गिक गति का दबाव कुछ ऐसा होता है कि ऐसा कोई मॉडल कभी लागू हो ही नहीं सकता। यही तो कारण था कि माकपा को भी पश्चिम बंगाल में अपने शासन के दौरान कल्याणवाद छोड़कर नवउदारवाद की शरण में जाना पड़ा!

इसके बाद माकपा नेतृत्व इस मज़ाक़िया विचारधारात्मक प्रस्ताव के बिन्दु 3.10 से 3.16 में हमारा ज्ञानवर्द्धन करते हुए बताता है कि पूँजीवाद संकटग्रस्त होने के बावजूद अपने आप नहीं पलट सकता और उसे पलटने के लिए मज़दूर वर्ग को राजनीतिक रूप से संगठित होकर एक मज़बूत आत्मगत शक्ति का निर्माण करना होगा! सही बात है! लेकिन कैसे? माकपा इतिहास द्वारा सौंपी गयी इस महती ज़िम्मेदारी को कैसे निभा रही है? संसदवाद, अर्थवाद, ट्रेडयूनियनवाद और सुधारवाद से! संगठित मज़दूरों के बीच आर्थिक संघर्ष के गोल चक्कर में घूमते हुए, और असंगठित मज़दूर वर्ग को राम भरोसे छोड़कर! और जब माकपा पूँजीवाद को "पलटने" की बात करती है, तो आप मुश्क़िल से अपनी हँसी रोक पाते हैं! अभी तो हमें बताया गया था कि पूँजीवाद को बदल जनवाद और समाजवाद की स्थापना के लिए शान्तिपूर्ण तरीक़े अपनाये जाएँगे! फिर से उलटना-पलटना कहाँ से आ गया! बाद में बात समझ में आयी! वह इसलिए कि माकपा के काडरों में जो ईमानदार बचे हैं, उन्हें भी भ्रम में बनाए रखना है! विश्वविद्यालय कैम्पसों आदि में जो परिवर्तनकामी नौजवान और छात्र पकड़ में आते हैं, उन्हें भी तो बेवक़ूफ़ बनाना है! अगर मज़दूर मार्क्सवाद के सम्पर्क में आकर पार्टी के संशोधनवाद पर सवाल खड़े करने लगें, तो उन्हें चुप कराने के लिए भी तो कुछ शब्द चाहिए! इसीलिए इस विचारधारात्मक प्रस्ताव में मार्क्स, लेनिन, माओ आदि का नाम लेकर काफ़ी तोपें छोड़ी गयी हैं! लेकिन, अगर आप पूरा दस्तावेज़ पढ़ें तो पता चलता है कि ये सब नौटंकी था!

बिन्दु 4.1 से 4.4 तक हमें साम्राज्यवाद के हौव्वे से डराया जाता है। बताया जाता है कि आज साम्राज्यवाद बेहद आक्रामक हो गया है। हर संकट के बाद कोई विकल्प न होने के कारण यह और अधिक शक्तिशाली होकर उभरता है और अपने शोषण को और अधिक सघन बना देता है। साम्राज्यवाद आज हर जगह हस्तक्षेप कर रहा है। जिन देशों ने नवउदारवाद को और वाशिंगटन सहमति को ठुकरा दिया उन्हें जनवाद का दुश्मन बता दिया जाता है और फिर वहाँ जनवाद स्थापित करने के नाम पर साम्राज्यवाद हस्तक्षेप करता है और मनमुआफ़िक़ तरीक़े से सत्ता परिवर्तन कर देता है। यह सच है कि आज साम्राज्यवाद अपने हितों पर ख़तरा पैदा होने पर हस्तक्षेप करता है। लेकिन साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा के तीखे होने के साथ विश्व साम्राज्यवाद के चौधरी अमेरिका को जगह-जगह समझौते करने पड़ रहे हैं, सत्ता में हिस्सेदारी देनी पड़ रही है और अब वह उतने मनमुआफ़िक़ तरीक़े से सत्ता परिवर्तन भी नहीं कर पा रहा है। इराक़ और अफ़गानिस्तान के विनाशकारी अनुभव के बाद कहीं भी हस्तक्षेप करने से पहले अमेरिका को बीस बार सोचना पड़ रहा है। यह हस्तक्षेप करने की ज़िम्मेदारी भी वह अन्य ताक़तों के साथ साझा करना चाहता है। मिसाल के तौर पर, लीबिया में हस्तक्षेप करने और फिर लूट का माल लपेटने में यूरोपीय ताक़तों का हाथ ऊपर रहा। उसी तरह सीरिया में हस्तक्षेप करने की भी अमेरिका हिम्मत नहीं जुटा पा रहा है। अरब जनउभार के दौरान जब जनविद्रोह के कारण अमेरिका-समर्थित सत्ताएँ पलट दी गयीं तो भी अमेरिका ने हस्तक्षेप करने का ख़तरा उठाने की बजाय नयी सत्ताओं को अपने हितों के अनुसार सहयोजित करने का प्रयास किया। स्पष्ट है कि साम्राज्यवाद हमेशा से ज़्यादा कमज़ोर और डावाँडोल स्थिति में है। आगे माकपा स्वयं यह बात मानती है और बिन्दु 4.5 में कहती है कि कई क्षेत्रीय शक्तियों जैसे कि तुर्की और सीरिया के उभार के कारण साम्राज्यवादी अन्तरविरोध बढ़े हैं। आप देख सकते हैं कि माकपा नेतृत्व बुनियादी मार्क्सवादी विश्लेषण भी भूल गया है। वह कहीं कुछ कहता है, तो कहीं कुछ! ऐसे अन्तरविरोधों से पूरा दस्तावेज़ भरा हुआ है।

पाँचवा खण्ड ('संक्रमण का दौर और आज का पूँजीवाद') में भी माकपा ने अपने संशोधनवादी कचरे को नायाब तरीक़े से फैलाने की कोशिशें की हैं। बिन्दु 5.1 और 5.2 में हमारे ज्ञानचक्षु खोलते हुए करात-येचुरी एण्ड कम्पनी कहती है कि 1992 में उनकी पार्टी ने कहा था कि 1990 में सोवियत संघ में समाजवाद का पतन समाजवाद की विचारधारा का पतन नहीं है। आगे हमें समाजवाद के शुरुआती प्रयोगों की समस्या बतायी जाती है! यह समस्या माकपा के मुताबिक़ इस तथ्य में निहित थी कि शुरुआती दौर में सर्वहारा क्रान्तियाँ उन देशों में हुईं जहाँ उत्पादक शक्तियाँ ज़्यादा उन्नत नहीं थीं! और ये क्रान्तियाँ उन्नत पूँजीवादी देशों में नहीं हुई थीं इसलिए इनसे पूँजीवाद की सेहत पर ज़्यादा असर नहीं पड़ा और पूँजीवाद विज्ञान और तकनोलॉजी में विकास करते हुए

(पेज 7 पर जारी)

मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी और मार्क्सवाद को विकृत करने का संशोधनवादी दस्तावेज़

(पेज 6 से आगे)

अपना विस्तार करता रहा! यह भी विचित्र तर्क है! यह त्रात्स्की के तर्क से मेल खाता है, जिसके अनुसार पिछड़े हुए देशों में यदि क्रान्तियाँ होंगी तो भी उनमें समाजवाद का निर्माण तब तक नहीं किया जा सकेगा, जब तक कि उन्नत देशों में क्रान्तियाँ न हो जायें। इसलिए माकपा के अनुसार सोवियत संघ में समाजवाद के असफल होने का एक कारण यह भी था कि वहाँ उत्पादक शक्तियों का पर्याप्त विकास नहीं हुआ था। एक तो यह बात तार्किक तौर पर ग़लत है और दूसरी बात यह कि यह तथ्यत: भी ग़लत है। सोवियत संघ 1950 के दशक तक दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी औद्योगिक शक्ति बन चुका था और सैन्य और वैज्ञानिक मामलों में वह कई अर्थों में अमेरिका से भी आगे था। बिन्दु 5.3 और 5.4 में हमें बताया जाता है कि सोवियत समाजवादी प्रयोग में यह ग़लती हो गयी कि लेनिन की इस चेतावनी को नज़रअन्दाज़ कर दिया गया कि पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हो सकती है। 1960 में चीनी पार्टी द्वारा साम्राज्यवाद के तत्काल ध्वंस की थीसिस को भी समाजवाद के पतन का एक कारण बताया गया है। लेकिन यह नहीं बताया गया है कि पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हुई कब थी? लेकिन पूरे मामले का सार माकपा यह बताती है कि समाजवाद के पतन का सबसे बड़ा कारण था कि वह पर्याप्त तेजी के साथ उत्पादक शक्तियों का विकास नहीं कर पाया। इसलिए बिन्दु 5.10 में माकपा नेतृत्व यह सिद्धान्त प्रतिपादित करता है कि 21वीं सदी के समाजवाद को उत्पादक शक्तियों के विकास की गति के मामले में पूँजीवाद को पीछे छोड़ना पड़ेगा। इस बात से माकपा कहाँ जाना चाहती है, यह आगे स्पष्ट हो जायेगा। लेकिन पहले यह स्पष्ट कर दिया जाये कि यह भी एक क़िस्म का अर्थवाद है जो समाजवाद का अर्थ सिर्फ़ उत्पादक शक्तियों का विकास समझता है। इस सिद्धान्त के अनुसार समाजवाद की पूँजीवाद पर श्रेष्ठता इस वजह से नहीं है कि समाजवाद एक समानतामूलक, न्यायपूर्ण और अधिक मानवीय व्यवस्था है। इस संशोधनवादी अर्थवाद के अनुसार समाजवाद की श्रेष्ठता केवल उत्पादक शक्तियों के पूँजीवाद से अधिक तेज़ विकास के द्वारा ही सिद्ध हो सकती है। सोवियत संघ में समाजवाद ने जनता को बेहतर जीवन, रोज़गार, शिक्षा और स्वास्थ्य मुहैया कराया और यही वह प्रधान कारण था जिसके कारण सोवियत संघ ने पूँजीवादी विश्व पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की। निश्चित रूप से सोवियत संघ ने दुनिया के किसी भी देश से ज्यादा तेज़ रफ्तार से उत्पादक शक्तियों का विकास किया। लेकिन सोवियत संघ की श्रेष्ठता का प्रमुख कारण यह नहीं था। उल्टे सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना की पृष्ठभूमि तैयार करने में सोवियत पार्टी की इस भूल की एक भूमिका थी कि उसने भी एक ग़लत समझदारी के चलते उत्पादक शक्तियों के विकास पर ज़्यादा और उत्पादन सम्बन्धों के क्रान्तिकारी रूपान्तरण को जारी रखने पर कम ज़ोर दिया। इसलिए माकपा का पूरा तर्क ही वास्तव में संशोधनवादी अर्थवाद का एक जीता-जागता उदाहरण है। वास्तव में, माकपा अपने इस तर्क से चीन के देङपन्थी 'बाज़ार समाजवाद' को सही ठहराना चाहती है। यह पवित्र काम माकपा अगले खण्ड में अंजाम देती है। लेकिन दस्तावेज़ के पाँचवे खण्ड के आख़िरी हिस्से में माकपा समाजवाद की अपनी समझदारी पेश करती है और कहती है कि समाजवाद के तहत सम्पत्ति के विभिन्न रूपों (जिसमें निजी सम्पत्ति भी शामिल है) को जारी रखा जाना चाहिए। राजकीय सम्पत्ति के साथ निजी सम्पत्ति को जारी रखना चाहिए। स्पष्ट है कि माकपा यहाँ सामूहिक सम्पत्ति पर बल नहीं देती। आज हम जानते हैं कि पूँजीपति वर्ग बिना निजी सम्पत्ति के भी अस्तित्वमान रह सकता है। वह राज्य के अधिकारियों के रूप में राजकीय सम्पत्ति का न्यासी बन सकता है। इस राजकीय सम्पत्ति पर जनता का कोई नियन्त्रण नहीं होता है। वह राजकीय पूँजीपति वर्ग के नियन्त्रण में होती है। पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध केवल पूँजी और सम्पत्ति के मालिकाने में निहित नहीं होते हैं बल्कि सामाजिक अधिशेष नियोजन की पूरी प्रक्रिया पर नियन्त्रण और श्रम विभाजन के रूप में भी अस्तित्वमान रहते हैं। इसका अर्थ यह है कि अगर क़ानूनी तौर पर निजी सम्पत्ति का ख़ात्मा कर भी दिया जाये तो पूँजीपति वर्ग राज्य और सत्ताधारी पार्टी में कुंजीभूत स्थानों पर आसीन होकर शासन चला सकता है, वह भी बिना निजी सम्पत्ति के। जैसा कि आज चीन में हो रहा है। अर्थव्यवस्था का करीब 60 फ़ीसदी हिस्सा अभी भी राज्य के नियन्त्रण में है। 77 फ़ीसदी सकल घरेलू उत्पाद के लिए अभी भी राजकीय उद्यम ज़िम्मेदार हैं। लेकिन यह राज्य सर्वहारा वर्ग के हाथ में नहीं है, बल्कि कम्युनिस्ट-नामधारी पूँजीवादी पार्टी के हाथ में है और उसके अधिकारी, पदधारी पूँजीपति वर्ग की सेवा करते हैं। अब तो चीन की संशोधनवादी पार्टी ने पूँजीपतियों को पार्टी की सदस्यता भी देनी शुरू कर दी है। ज़ाहिर है कि राज्य से लेकर पार्टी तक में निजी पूँजीपतियों की पहुँच बढ़ती जा रही है। तो एक तरफ़ मज़दूर वर्ग पर सामाजिक फ़ासीवादी नियन्त्रण और विज्ञान और तकनोलॉजी में नवोन्मेष के जरिये चीन अपनी वृद्धि दर को लगातार 7-8 प्रतिशत के ऊपर रखने में सफ़ल हुआ है; अमेरिका के लिए चीन एक साम्राज्यवादी चुनौती के रूप में उभरा है और विश्व चौधराहट में अमेरिका उसे कुछ हिस्सेदारी देने के लिए विवश भी हुआ है, लेकिन यह सारी तरक्की चीन में समाजवादी संस्थाओं, सम्बन्धों और मूल्यों के ध्वंस और मज़दूर वर्ग को फिर से, और पहले से भी ज़्यादा भयंकर रूप में उजरती गुलाम बनाने की क़ीमत पर हुआ है। तो उत्पादक शक्तियों का तो विकास हो रहा है लेकिन समाजवाद को नष्ट करके! लेकिन माकपा के लिए यह 21वीं सदी के समाजवाद का एक सम्भावित मॉडल है! हो भी क्यों नहीं! पश्चिम बंगाल में बुद्धदेव अपने चीनी गुरुओं के देङपन्थ पर ही तो अमल करने की कोशिश कर रहा था!

छठवें खण्ड ('समाजवादी देशों में घटना विकास') में माकपा ने खुलकर चीन के 'बाज़ार समाजवाद' का समर्थन किया है। माकपा ने एक बार फिर संशोधनवादियों के पाप को लेनिन और माओ के सिर मढ़ने का प्रयास किया है। पहले तो दस्तावेज़ में हमें बताया जाता है कि भूमण्डलीकरण के दौर में विश्व पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के साथ समेकन समाजवादी देशों की मजबूरी है! यह भी बताया गया है कि इस समेकन के कारण मौजूदा समाजवादी देशों में (यानी कि नामधारी समाजवादी देशों में) असमानता, ग़रीबी, बेरोज़गारी और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। माकपा आगे बताती है कि इन देशों की उसकी सहोदरा ग़द्दार संशोधनवादी पार्टियों ने इन पहलुओं पर ग़ौर किया है और ज़रूरी क़दम भी उठाये हैं। माकपा इन क़दमों को सही ठहराने के लिए बताती है कि 21वीं सदी में अलग-अलग देशों की ठोस परिस्थितियों के मुताबिक़ अलग-अलग तरीक़े से समाजवाद का निर्माण होगा। लेकिन माकपा 21वीं सदी की "भिन्न" परिस्थितियों में जिस " भिन्न" प्रकार का "समाजवाद" बनाना चाहती है, उसमें कुछ भी समाजवादी बचा ही नहीं है। वह बिना पूँजीवादी जनवाद के बर्बर और नंगे क़िस्म का पूँजीवाद होगा, जैसा कि चीन में है! माकपा बिन्दु 6.4 में बताती है आज चीन में जो चीज़ लागू हो रही है वह लेनिन के नेतृत्व में सोवितय संघ में लागू हुई 'नई आर्थिक नीतियों' जैसा है जिसमें लेनिन ने निजी सम्पत्ति को बरक़रार रखा था, बाज़ार को अपेक्षाकृत खुला हाथ दिया था, निजी व्यापारियों को खुला हाथ दिया था और पूँजीवादी नीतियों को लागू करते हुए पहले उत्पादक शक्तियों का उस हद तक विकास करने की नीति अपनायी थी जिसके बाद समाजवाद का निर्माण शुरू किया जा सके! एक तो माकपा सोवियत संघ में 1921 में लागू की गयी नयी आर्थिक नीतियों के बारे में झूठ बोल रही है और लोगों को बेवकूफ़ बनाने की कोशिश कर रही है, ताकि वे चीन में जो कुछ हो रहा है उसे समाजवाद समझें। 1921 में जब रूस में क्रान्ति के बाद से जारी गृह युद्ध समाप्त हुआ तो लेनिन ने इस बात का अहसास किया कि सोवियत संघ में अगर क्रान्ति की रक्षा करनी है तो मज़दूर-किसान संश्रय को बचाना होगा, जिसे लेनिन स्मिच्का कहते थे। लेनिन का स्पष्ट मानना था कि सोवियत संघ में मज़दूर अल्पसंख्या में हैं और मज़दूर सत्ता ग़रीब और मँझोले किसानों के सहयोग के बिना टिक नहीं सकती है। सर्वहारा सत्ता के व्यापक सामाजिक आधार के लिए फिलहाल किसानों को ज़मीन का निजी मालिकाना देना पड़ेगा, उन्हें अपने माल के अधिशेष को बाज़ार में व्यापारियों के हाथ बेचने की आज़ादी देनी होगी, बाज़ार की ताक़तों को थोड़ा खुला हाथ देना पड़ेगा। लेकिन यह लेनिन के लिए चयन का मसला नहीं था, बल्कि मजबूरी थी। लेनिन ने कहा था कि देश की 87 फ़ीसदी आबादी ग्रामीण है और मुख्य रूप से कृषि में संलग्न है। सर्वहारा सत्ता तुरन्त जबरन खेती का सामूहिकीकरण नहीं शुरू कर सकती। इसलिए हमें सबसे पहले भूमिहीन और ग़रीब किसानों को सामूहिकीकरण पर सहमत करना होगा, वे इसके लिए सबसे जल्दी तैयार होंगे। उसके बाद मँझोले किसानों को भी ज़ोर-ज़बर्दस्ती से बचते हुए समझाना होगा और सामूहिकीकरण पर लाना होगा। अगर ऐसा न किया गया तो कुलक उन्हें अपने पक्ष में कर लेंगे और सोवियत सत्ता के लिए अस्तित्व का संकट पैदा हो जायेगा। लेनिन ने कहा कि नयी आर्थिक नीतियाँ वास्तव में रणनीतिक तौर पर कदम पीछे हटाने जैसा है, और आने वाले चार-पाँच वर्षों तक हमें उन्हें जारी रखना होगा। यह सोवियत सत्ता को मोहलत देगा कि वह गाँव की बहुसंख्यक आबादी को जीत ले और फिर कुलकों से ज़मीनें ज़ब्त करते हुए सामूहिक खेती की स्थापना करे। इस तरह हम देख सकते हैं कि जिस नयी आर्थिक नीति की माकपा बात कर रही है, वह रूसी पार्टी ने विशेष परिस्थिति में मजबूरी के चलते लागू की थी और उस समय भी सभी उद्योगों का सामूहिकीकरण या राजकीयकरण कर दिया गया था। उसका मक़सद उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए पूँजीवादी तौर-तरीक़ों का तब तक इस्तेमाल करना नहीं था, जब तक कि समाजवाद के निर्माण योग्य उत्पादक शक्तियाँ विकसित न हो जायें; बल्कि उसका मकसद था तब तक भूमि के निजी मालिकाने और बाज़ार की ताक़तों को छूट देना जब तक कि सोवियत सत्ता अपने सामाजिक आधार का गाँवों में विस्तार न कर ले। ऊपर से माकपा तथ्यों के साथ बलात्कार करते हुए यह सिद्ध करने की कोशिश कर रही है कि चीन की कम्युनिस्ट पार्टी इस समय वही नीतियाँ लागू कर रही है जो लेनिन के नेतृत्व में नयी आर्थिक नीतियों के तहत 1921 से लागू की गयी थीं! चीन की संशोधनवादी पार्टी इस समय सामाजिक फ़ासीवादी नियन्त्रण का इस्तेमाल करके बर्बर और नग्न तरीक़े से किसानों को तबाहो-बरबाद कर रही है, मज़दूरों का दमन कर रही है और पूरी मेहनतकश आबादी को उसने पूँजी की नंगी तानाशाही के नीचे दबा दिया है। न तो उसने किसानों के भले के लिए कुछ किया है और न ही उसने सभी उद्योगों का राजकीयकरण या सामूहिकीकरण किया है। उल्टे जितने उद्योग माओ के समय में मज़दूरों के कम्यूनों के हाथ थे, देङपन्थी संशोधनवादियों ने उन सभी कम्यूनों को भंग कर उन्हें निजी या राजकीय पूँजीपतियों के हाथों सौंप दिया है, और मज़दूरों से इन उद्योगों में फ़ासीवादी आतंक स्थापित करके काम कराया जाता है। अब माकपा इन दोनों विपरीत चीज़ों में क्यों समान्तर स्थापित कर रही है, इसका कारण समझा जा सकता है। माकपा का मानना है कि चीनी पार्टी भी पूँजीवादी तौर-तरीक़ों का इस्तेमाल कर उत्पादक शक्तियों का विकास उस हद तक कर रही है कि फिर समाजवाद का निर्माण किया जा सके! चीनी पार्टी के दस्तावेज़ को उद्धृत करते हुए माकपा बताती है कि चीन अभी आने वाले 100 साल तक इसी मंज़िल में रहेगा! वाह! यानी, 100 सालों तक चीनी पार्टी ने अपने पूँजीवादी तौर-तरीक़ों को लागू कराने का बीमा करा लिया है! और माकपा इसे एकदम सही मानती है! यह है माकपा का असली पूँजीवादी चरित्र! यानी, जपते रहो 'समाजवाद-समाजवाद' और लागू करो नंगे क़िस्म का पूँजीवाद! गज़ब तो तब हो जाता है जब माकपा इस पूरी नीति को मार्क्स और एंगेल्स की नीति बताती है, जिन्होंने कहा था कि समाजवाद का विकास नीचे से होता है! अब मार्क्स और एंगेल्स ने सपने में भी नहीं सोचा होगा, कि उनके कथन की ऐसी व्याख्या भी हो सकती है! लेकिन अभी मानवता ने प्रकाश करात और सीताराम येचुरी जैसे बेशर्म और घाघ संशोधनवादी नहीं पैदा किये थे!

बिन्दु 6.8 में माकपा बताती है कि चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का 'बाज़ार समाजवाद' बिल्कुल सही है क्योंकि समाजवाद के तहत तो माल उत्पादन होगा ही, और अगर माल उत्पादन होगा तो बाज़ार भी रहेगा ही! यह भी मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के साथ बेहूदी क़िस्म की ज़ोर-ज़बर्दस्ती है। निश्चित रूप से, समाजवाद के दौरान पूँजीवादी श्रम विभाजन मौजूद रहता है और इसलिए वस्तुओं का विनिमय होता है। चूँकि वस्तुओं का विनिमय होता है इसलिए उनका अस्तित्व महज़ वस्तुओं के रूप में नहीं बल्कि माल के रूप में होता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि माल उत्पादन को बढ़ावा दिया जाता है और बाज़ार को प्रोत्साहित किया जाता है। उल्टे सर्वहारा सत्ता लगातार मानसिक और शारीरिक श्रम, शहर और गाँव और उद्योग और कृषि के बीच के अन्तर को ख़त्म करते हुए पूँजीवादी श्रम विभाजन और बुर्जुआ अधिकारों का ख़ात्मा करती है और माल उत्पादन को नियन्त्रित करते हुए, समाजवादी उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सम्बन्धों को बढ़ावा देते हुए लगातार साम्यवाद की ओर संक्रमण को सम्भव बनाती है। दूसरी बात, समाजवादी समाज के ही उन्नत मंज़िलों में विनिमय को चलाने के लिए बाज़ार और मुद्रा की ज़रूरत समाप्त हो जाती है। विनिमय की पूरी प्रक्रिया को राज्य चलाता है और बाज़ार की ज़रूरत ही समाप्त हो जाती है। इसलिए यहाँ भी माकपा का घाघ नेतृत्व जानबूझकर समझदारी दिखलाने की कोशिश कर रहा है। त्रासदी यह है कि हमारे देश में बहुतेरे मार्क्सवादी भी मार्क्सवाद नहीं पढ़ते और कई संशोधनवादी उनसे ज़्यादा मार्क्सवाद पढ़े हुए हैं। नतीजा यह होता है कि माकपा जैसी ग़द्दार और घाघ पार्टियों की ग़द्दारी को वे पकड़

(पेज 14 पर जारी)

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (तीसरी किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराब, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये।

पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की क़ुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती।

'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से हमने दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की है, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी। **– सम्पादक**

मेहनतकशों के ख़ून से लिखी पेरिस कम्यून की अमर कहानी

पिछली दो किश्तों में हमने जाना कि 'पूँजी की ज़ालिम, बर्बर सत्ता के ख़िलाफ़ लड़ना कैसे सीखा मज़दूरों ने'। मशीनें तोड़कर अपना गुस्सा निकालने से शुरू होकर मज़दूरों का संघर्ष चार्टिस्ट आन्दोलन तक पहुँचा। यह सर्वहारा वर्ग का पहला व्यापक आन्दोलन था और असफल होने के बावजूद यह एक प्रेरणादायी उदाहरण बन गया। फिर 1848 की क्रान्तियों में मज़दूर वर्ग ने बढ़चढ़कर हिस्सा लिया और बहुत भारी क़ुर्बानियाँ देकर बेशक़ीमती सबक़ सीखे। हमने कम्युनिस्ट लीग के गठन, कम्युनिस्ट घोषणापत्र लिखे जाने और मज़दूरों के पहले अन्तरराष्ट्रीय संगठन के गठन के बारे में जाना। इस अंक में हम पेरिस कम्यून की पूरी कहानी को एक बार थोड़े शब्दों में पाठकों के सामने रख दे रहे हैं। इस महागाथा के एक-एक पहलू के बारे में अगले कई अंकों में हम विस्तार से बतायेंगे।

1. 1870 की गर्मियों में फ्रांसीसी पूँजीपति वर्ग ने देश को प्रशिया के साथ युद्ध में उतार दिया। सरकार और फ़ौज के नेता भ्रष्ट थे। एक के बाद एक कई लड़ाइयों में फ्रांस की हार हुई। आख़िरकार, सितम्बर में, 80,000 अप्रशिक्षित और जर्जर हथियारों से लैस लोगों को प्रशिया की सुसंगठित और सुसज्जित सेना के सामने झोंक दिया गया। फ्रांसीसी घेर लिये गये और बुरी तरह परास्त हुए। नेपोलियन तृतीय और उसकी लगभग आधी सेना क़ैद कर ली गयी। पेरिस की रक्षा कर रही सेना का भी यही हाल हुआ। प्रशिया वाले राजधानी पर चढ़ आये! परन्तु नगर की मेहनतकश जनता "नेशनल गार्ड" का गठन कर चुकी थी। उन्हें खाने के लाले पड़े हुए थे। नानबाई की दुकानों के सामने रोटी के लिए लम्बी क़तारें लगी रहती थीं। मगर उन्होंने शहर की हिफ़ाज़त के लिए कई तोपें हासिल कीं और उन्हें पेरिस के परकोटों पर जमा दिया। पेरिस के अमीरों को लगा कि मज़दूरों की इस कार्रवाई में उनके लिए भी उतना ही ख़तरा है जितना प्रशियाइयों के लिए है। जनता का क्रान्तिकारी जोश जागृत हो चुका था और बाहर के दुश्मनों पर तनी उनकी संगीनें उतनी ही आसानी से भीतरी दुश्मनों की तरफ़ भी मुड़ सकती थीं। अमीरों के इशारे पर जनता से तोपें छीनने की कोशिश की गयी। फ़ौरन चेतावनी का संकेत दिया गया : पूरे शहर के मज़दूर, जिसमें स्त्रियाँ भी थीं और पुरुष भी, तोपों की रक्षा के लिए निकल पड़े। और सरकारी सैनिक इन रक्षकों पर हमला करने के बजाय इनके साथ आ खड़े हुए।

पेरिस की रक्षा के लिए मज़दूरों और नेशनल गार्ड ने बहुत-सी तोपों को अपने कब्ज़े में लेकर पेरिस में जगह-जगह तैनात कर दिया। मोन्तमार्त्र पहाड़ी पर लगी ऐसी ही एक तोप। 18 मार्च 1871 को मन्त्री थियेर ने अपने सैनिकों को सारी तोपें मज़दूरों और नेशनल गार्ड के कब्ज़े से छीन लेने का आदेश दिया। इसी के विरोध से पेरिस में मज़दूरों के विद्रोह की शुरुआत हुई।

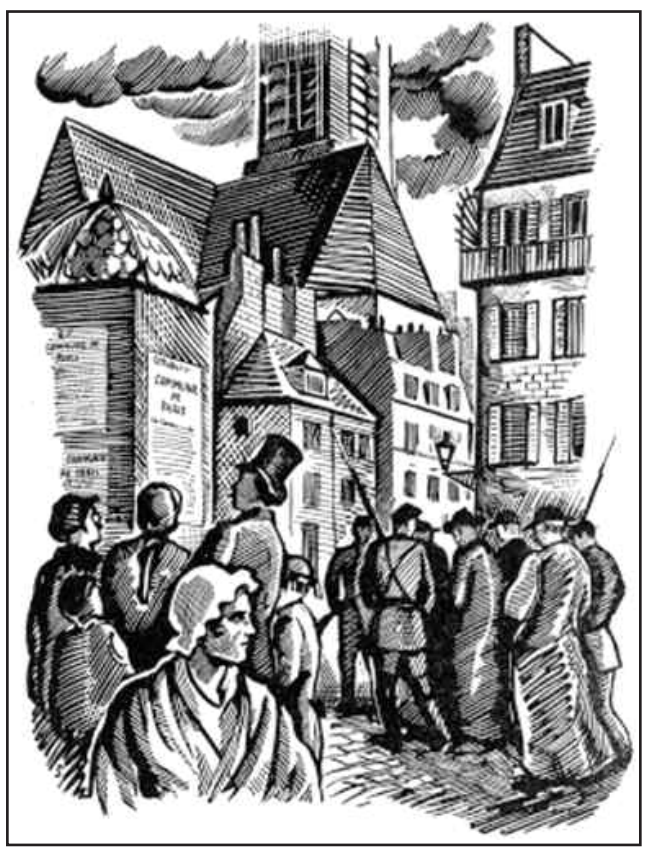

कम्यून के फैसलों की घोषणा होते ही उन्हें पढ़ने के लिए पेरिस के मेहनतकशों की भीड़ लग जाती थी। एक दीवार पर चिपकायी गयी घोषणाओं को पढ़ते हुए मेहनतकश लोग।

2. **18 मार्च, 1871** को पेरिस कम्यून, यानी मज़दूरों के राज की घोषणा कर दी गयी। सरकार अपनी फ़ौजी टुकड़ियों के साथ भागकर पेरिस से कुछ दूर वर्साय के महलों में चली गयी। कम्युनार्डों ने उन्हें जाने दिया, जबकि इन सैनिकों को वे अपने पक्ष में कर सकते थे। उन्हें नगर के उन अमीरों को, जो पेरिस से भाग रहे थे, बन्धक बना लेना चाहिए था, मगर उन्होंने ऐसा नहीं किया। अपनी इस उदारता की उन्हें बहुत भारी क़ीमत चुकानी पड़ी। एरोनदिसमेण्ट या ज़िलों में बँटे पेरिस महानगर पर अब कम्युनार्ड दस्तों का क़ब्ज़ा था – इसमें स्त्री-पुरुष, मज़दूर और बुद्धिजीवी सभी शामिल थे – जो लेनिन के शब्दों में, "एक नये प्रकार के राज्य – मज़दूरों के राज्य" का निर्माण कर रहे थे। इस नये राज्य की घोषणाएँ पढ़ने के लिए सड़कों पर लोगों की भीड़ लग जाती – चर्च का सत्ता से अलगाव, नानबाई की दुकानों में रात में काम करने की मनाही, ग़रीबों का पिछला किराया रद्द, पादरियों की गिरफ़्तारी, उजड़ गयी फ़ैक्टरियों को फिर से चालू करना, मज़दूरों के ख़िलाफ़ जुर्माने का ख़ात्मा।

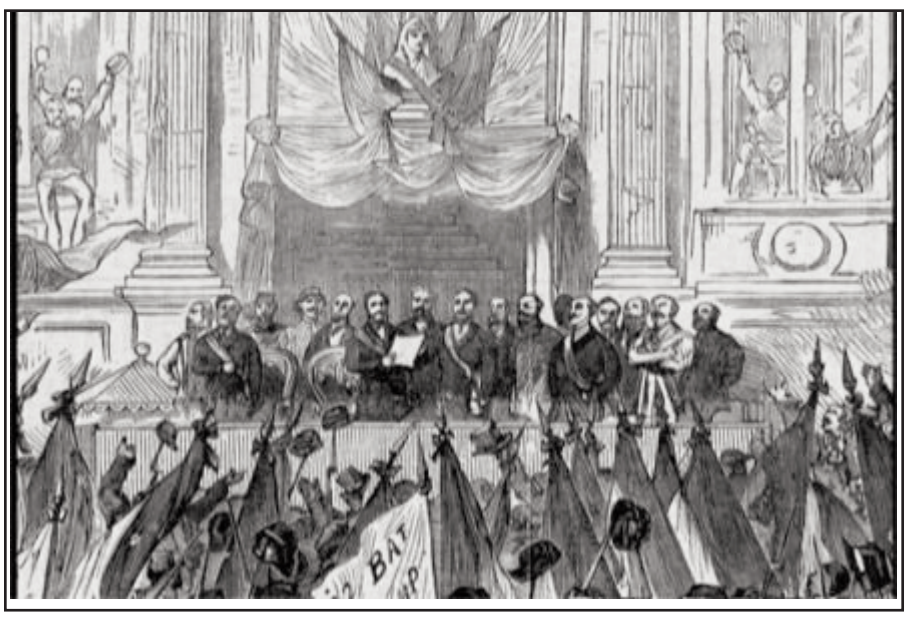

26 मार्च 1871 को जनता द्वारा चुनी गयी कमेटी ने पेरिस कम्यून की स्थापना की घोषणा कर दी। सारे पेरिस के मज़दूरों में उत्साह की लहर दौड़ गयी। उन्होंने हर हाल में कम्यून की रक्षा का संकल्प लिया।

3. दुनिया की इस पहली मजदूर सरकार की स्थापना पूंजीवादी राज्य की नौकरशाही को पूरी तरह भंग करके सच्चे सार्विक मताधिकार के बाद हुई, जिसके चलते दर्जी, नाई, मोची, प्रेस मजदूर–ये सभी कम्यून के सदस्य चुने गये। कम्यून को कार्यपालिका और विधायिका, यानी सरकार और संसद–दोनों का ही काम करना था। पुरानी पुलिस और सेना को भंग कर दिया गया और पूरी मेहनतकश जनता को शस्त्र-सज्जित करने का काम शुरू किया गया। सत्तासीन होने के महज दो दिन बाद ही पुरानी सरकार के सभी बदनाम कानूनों को कम्यून ने रद्द कर दिया। कम्यून ने पहली बार वास्तविक धर्मनिरपेक्ष जनवाद को साकार करते हुए यह घोषणा की कि धर्म हर आदमी का निजी मामला है और राज्य या सरकार को इससे एकदम अलग रखा जायेगा। कम्यून में महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण ओहदे और ज़िम्मेदारी वाले व्यक्ति को भी कोई विशेषाधिकार नहीं हासिल था। मजदूर और अफ़सरों-मंत्रियों की तनख़्वाहों में पूँजीवादी हुकूमत के दौरान जो आकाश-पाताल का अन्तर था, उसे ख़त्म कर दिया गया। पेरिस कम्यून में आम मेहनतकश जनसमुदाय वास्तविक स्वामी और शासक था। जब तक कम्यून क़ायम रहा, जन समुदाय व्यापक पैमाने पर संगठित था और सभी अहम राजकीय मामलों पर लोग अपने-अपने संगठनों में विचार-विमर्श करते थे।

वीर कम्युनार्डों ने सेना का ज़बर्दस्त मुकाबला किया। एक बैरिकेड पर लड़ती हुई स्त्री मज़दूर।

मज़दूरों ने कम्यून की रक्षा के लिए पेरिस में जगह-जगह सड़कों पर बैरिकेड खड़े करके सरकारी सेना से मोर्चा लेने की तैयारी शुरू कर दी। इनमें स्त्रियाँ भी अगली कतारों में थीं।

4. इसी दरम्यान वर्साय में बादशाह का मन्त्री थियेर और उसकी प्रतिक्रियावादी सरकार प्रशियाई अधिकारियों की सहायता से पेरिस कम्यून पर आक्रमण करने की योजना बना रही थी। इस हमले के लिए प्रशिया ने हज़ारों की संख्या में क़ैद फ़्रांसीसी सैनिकों को लौटाने का समझौता किया था। इन सैनिकों को हथियारबन्द करके मज़दूरों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया जाना था। प्रशिया और फ़्रांस के शासक जो आपस में युद्ध में उलझे हुए थे, मज़दूरों को कुचलने के लिए बेशर्मी के साथ एक हो गये थे। दूसरी ओर, कम्युनार्ड भी अपनी तैयारी कर रहे थे। सड़कों पर बैरिकेड खड़े कर दिये गये। स्त्रियों और पुरुषों ने मिलकर इन्हें खड़ा किया और उन पर मोर्चा सँभाल लिया। लेकिन वे समूचे शहर पर क़ब्ज़ा नहीं रख सके। जो बुर्जुआ पेरिस में रह गये थे, उन्होंने वर्साय तक यह सूचना पहुँचा दी कि शहर में किन जगहों पर प्रतिरक्षा कमज़ोर है, और 22 से 28 मई के बीच फ़ौजें उन दरवाज़ों से भीतर घुस आयीं जहाँ पहरे की व्यवस्था कमज़ोर थी।

5. यह एक रक्तरंजित सप्ताह था। कम्युनार्डों ने डटकर मुक़ाबला किया। लेकिन हमलावर फ़ौजों के सामने उन्हें पीछे हटना पड़ा और पेरिस के एक छोटे-से हिस्से में उन्होंने आख़िरी मोर्चा लिया। अब हर गली युद्ध का मैदान था और हर मक़ान एक क़िला। ऐसे भीषण हमले के आगे थके-माँदे कम्युनार्ड पीछे हटने को मजबूर थे जिसमें औरतों और बच्चों तक की जान नहीं बख़्शी गयी। नगर के जलते खण्डहरों के बीच लड़ते हुए हज़ारों कम्युनार्डों को क़ैद कर लिया गया। हज़ारों को तो वहीं मौत के घाट उतार दिया गया। कई हज़ार लोगों को जिनमें बच्चे, बीमार और बूढ़े थे, हाँककर खुली जगहों में लाया गया और गोली मार दी गयी। पागलपन से भरी वर्साय सेना की हर टुकड़ी जल्लादों का गिरोह थी, जो कम्यून से सहानुभूति रखने का सन्देह होते ही हर व्यक्ति को फ़ौरन मौत के घात उतार देती थी। कम्यून अपने ही ख़ून के दरिया में डुबो दिया गया। पेरिस के रईस, जिनमें से कई अब लौट आये थे, सड़क की पटरियों पर खड़े होकर इस घृणित तमाशे को देख रहे और इस जीत के लिए अपनी पीठ थपथपा रहे थे।

कम्यून में भाग लेने के लिए हज़ारों मज़दूरों पर मुकदमा चलाने का नाटक किया गया। लेकिन सारे जज पूँजीपतियों के आदमी थे और मुकदमे का फैसला पहले से तय था। हज़ारों मज़दूरों को मौत की सज़ा या देशनिकाला दिया गया।

6. श्वेत आतंक बेरोकटोक जारी था। हज़ारों की संख्या में कम्युनार्डों को घेरकर पेरे लाशेज़ क़ब्रगाह और दूसरी दर्जनभर जगहों पर ले जाकर गोलियों से भून दिया गया। दीवारों के साथ खड़ाकर निडर भीड़ पर जब सेना गोलियाँ बरसाती तो, पेरिस के मज़दूरों का हत्यारा, जनरल गैलीफ़ेट वहाँ खड़ा होकर तमाशा देखता था। लाशों के बड़े-बड़े टीले बन गये, जिनमें वे भी थे जिनकी अभी मौत नहीं हुई थी... "कम्युनार्डों की दीवार" का एक हिस्सा अभी भी मौजूद है, उस पर बनाये गये वीर कम्युनार्डों के चेहरे पूँजीवादी शासन को चुनौती भी है और कम्यून के शहीदों का स्मारक भी है। सिर्फ़ उस एक सप्ताह में 40,000 मज़दूरों का क़त्लेआम हुआ। फिर वे कम्युनार्ड, जो वहाँ से बचकर निकल गये थे, घेरकर लाये गये और उनके साथ मुक़दमे का नाटक किया गया। उन सभी को अपराधी घोषित किया गया और या तो गोली मार दी गयी या फ़्रांस के क़ब्ज़े वाले दूरदराज़ के टापुओं में बुखार, अतिशय काम के बोझ और लापरवाही से मरने के लिये भेज दिया।

7. कम्यून के जीवनकाल में ही **कार्ल मार्क्स** ने लिखा था : **"यदि कम्यून को नष्ट भी कर दिया गया, तब भी संघर्ष सिर्फ़ स्थगित होगा। कम्यून के सिद्धान्त शाश्वत और अनश्वर हैं, जब तक मज़दूर वर्ग मुक्त नहीं हो जाता, तब तक ये सिद्धान्त बार-बार प्रकट होते रहेंगे।"** मजदूरों की पहली हथियारबन्द बग़ावत और पहली सर्वहारा सत्ता की अहमियत बताते हुए मार्क्स ने कहा था, **"18 मार्च का गौरवमय आन्दोलन मानव जाति को वर्ग-शासन से सदा के लिए मुक्त कराने वाली महान सामाजिक क्रान्ति का प्रभात है।"**

कम्यून को ख़ून की नदियों में डुबोकर भी पूँजीपति कभी चैन से नहीं बैठ सके। मज़दूरों ने अपने साथियों के ख़ून से लाल झण्डे को उठाकर आज़ादी और इंसाफ़ की दुनिया के लिए अपनी लड़ाई फिर से शुरू कर दी।

समस्या की सही पहचान करो, साझे दुश्मन के ख़िलाफ़ एकजुट हो!

लुधियाना के टेक्सटाइल मज़दूर दो वर्ष से अपने अधिकारों के लिए एकजुट संघर्ष कर रहे हैं। उन्होंने मालिकों को कुछ माँगें मानने के लिए मजबूर भी किया है। मगर जो फैसले हुए उन्हें मालिकों ने आधा-अधूरा ही लागू किया। मालिक समझौता करते हैं और तोड़ते हैं। उनकी यही फ़ितरत है। लेकिन मज़दूरों के हौसले बुलन्द हैं और एकजुटता बनी हुई है वरना जो कुछ लागू हो रहा है वो भी न हो पाता। टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन का प्रसार विभिन्न इलाकों में हो रहा है और मज़दूरों की एकजुट ताकत बढ़ रही है।

इन संघर्षों से प्रेरणा लेकर पावरलूम मज़दूरों में से मशीन मास्टर (मशीनों की मरम्मत करने वाले मज़दूर) बाकी पावरलूम मज़दूरों से अलग अपनी यूनियन बनाने के लिए प्रत्यनशील हैं। यह बात स्वागतयोग्य है कि मज़दूर हक के लिए एकता की ज़रूरत को समझने लगे हैं। लेकिन कुछ और भी पहलू हैं जिनकी तरफ ध्यान देना ज़रूरी है।

मशीन मास्टर वे मज़दूर हैं जो लम्बे समय से पावरलूम का काम करते आये हैं और मशीनें चलाते-चलाते उन्हें ठीक करना सीख गये हैं। ये मज़दूर बाकी मज़दूरों से अधिक तजुर्बेकार समझे जाते हैं। इनके भीतर बाकी मज़दूरों से वरिष्ठ होने की भावना भी बैठी हुई है। इस वजह से मज़दूरों का यह समूह खुद को बाकी मज़दूरों से अलग करके देखता है। धागों को लपेटकर ताना बनाने वाले ताना मास्टर और उन्हें मशीनों पर चढ़ाने वाले मरोड़ी वाले मज़दूरों के भी ऐसे ही कुछ समूह हैं। अलग-अलग ढंग का काम, तजुर्बे और वेतन का फ़र्क आदि मज़दूरों की कम चेतना के कारण उनमें दूरी पैदा करते हैं। इसका मज़दूरों को बहुत नुकसान होता है वहीं मालिक मज़दूरों के इन आपसी अन्तरविरोधों का खूब फ़ायदा उठाते हैं।

लेकिन सच तो यह है कि मज़दूरों की समस्याओं में कोई फ़र्क नहीं है। सभी मज़दूरों की माँगें भी एक सी ही बनती हैं। ठेका और पीस रेट सिस्टम का खात्मा, पक्की भर्ती, आठ घण्टे के काम का उचित वेतन, पहचान पत्र, ईएसआई, पीएफ, साप्ताहिक छुट्टी सहित अन्य छुट्टियाँ, बोनस, कारख़ानों के भीतर हादसों से सुरक्षा के इन्तज़ाम, आदि बुनियादी माँगें सभी नये-पुराने, कुशल-अकुशल, हर तरह के काम करने वाले मज़दूरों की माँगें हैं। इन माँगों के लिए एकजुटता बनाना मज़दूरों की ज़रूरत है। यह बात सिर्फ़ पावरलूम या टेक्सटाइल के मज़दूरों पर ही लागू नहीं होती बल्कि लुधियाना सहित देश के सभी मज़दूरों के लिए यही बात सच है। मज़दूरों में एकता का अभाव है इसीलिए सरकार पूँजीपतियों की सेवा का खुला खेल खेल रही है। कोई भी श्रम क़ानून आज कहीं लागू नहीं हो रहे हैं। कारख़ाना क्षेत्रें में मालिक मज़दूरों को लूटने की कोई कसर बाकी नहीं छोड़ रहे। श्रम विभाग मालिकों की जेब में है। सरकारी नीति के तहत श्रम विभाग में अफ़सरों, कर्मचारियों के अधिकतर पद खाली पड़े हैं। जो हैं भी वे कारख़ानों का चक्कर सिर्फ़ घूस लेने के लिए लगाते हैं। इन सभी मुद्दों पर देश स्तर पर संघर्ष संगठित करना जरूरी है। याद रहे कि मालिक इस समय मज़दूरों के मुकाबले अधिक संगठित हैं। छोटे-छोटे समूहों में बँटकर, विशाल संगठन के अभाव में मज़दूर मालिकों की संगठित ताकत का मुकाबला नहीं कर सकते हैं। इसलिए मज़दूरों को अपने छोटे-मोटे मतभेदों को दरकिनार करके हुए साझे दुश्मन के ख़िलाफ़ विशाल संगठित ताकत जुटानी होगी।

पावरलूम मज़दूरों के बीच कुछ दोस्ताना किस्म के अन्तरविरोध हैं। मशीन मास्टरों में दो तरह के मास्टर हैं - एक ही कारख़ाने में वेतन पर काम करने वाले और दूसरे हैं कई कारख़ानों में थोड़े-थोड़े वेतन पर काम करने वाले मशीन मास्टर। एक अन्तरविरोध तो इन्हीं के बीच है। दूसरा अन्तरविरोध सभी मशीन मास्टरों और बाकी सभी पावरलूम मज़दूरों के बीच का है। यह दोस्ताना अन्तरविरोध चेतना कम होने की वजह से कई बार काफी तीखे हो जाते हैं जबकि इन्हें हल किया जा सकता है। इन अन्तरविरोधों को सही ढंग से हल करने के लिए मज़दूर एकता को व्यापक बनाने का नज़रिया अपनाना चाहिए।

मशीन मास्टरों में बड़ा हिस्सा उन मास्टरों का है जो वेतन पर एक फैक्ट्री में काम करते हैं। जब कोई वेतन वाला मास्टर मालिक को वेतन बढ़ाने के लिए कहता है तो उसे काम से हटा दिया जाता है और मालिक उसकी जगह आ-जाकर कई कारख़ानों में मशीन मरम्मत करने वाले मास्टर को रख लेते हैं। मशीन मास्टर आपस में झगड पड़ते हैं। फ़ायदा मालिक उठाते हैं। आम तौर पर मालिक कारख़ाने में मशीनों की संख्या के हिसाब से वेतन तय करते हैं। छोटे कारख़ाने में मिलने वाले वेतन से मशीन मास्टर का गुज़ारा नहीं हो पाता। इसलिए वे साथ ही दूसरे कारख़ानों में भी काम पकड़ लेते हैं। असल समस्या तो यह है कि मज़दूर पर काम का बोझ बहुत अधिक है और वेतन कम। महँगाई बढ़ती है और वेतन या पीस रेट न बढ़ने के कारण मज़दूर को अपने काम के घण्टे बढ़ाने पड़ते हैं और अधिक मशीनों पर काम करना पड़ता है। यही हालत इन मशीन मास्टर मज़दूरों की है। किसी भी कारख़ाने में मशीन मास्टरों की तरह बाकी मज़दूरों की भी पक्की भरती नहीं है जिस कारण श्रम क़ानूनों के मुताबिक मिल सकने वाले फ़ायदों से वे भी वंचित रह जाते हैं। अगर श्रम क़ानून लागू हों और आठ घण्टे काम के बदले मज़दूरों को इतना वेतन मिले जिससे उनके परिवार का गुज़ारा आसानी से चल सके तो मज़दूर एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे कारख़ाने में क्यों भागेगा? अगर ऐसा हो तो क्यों कोई मज़दूर दूसरों से कम वेतन पर काम करने को तैयार होगा? अगर संयम से काम लिया जाये और इन बातों पर झगड़ों को तीखा न किया जाये तो एकजुटता बनाने की तरफ़ बढ़ा जा सकता है और एकजुट चेतना के दम पर इस रुझान को भी एक हद तक रोका जा सकता है। लेकिन इन बातों को न समझ पाने के कारण मज़दूरों में झगड़े तीखे होने लगते हैं।

जैसा कि उपर कहा जा चुका है कि दूसरा अन्तरविरोध मास्टरों और बाकी सभी पावरलूम मज़दूरों के बीच का है। यह अन्तरविरोध गम्भीर बनता जा रहा है। लुधियाना के एक मुहल्ले मायापुरी के एक कारख़ाने में इससे जुड़ी एक घटना तो अभी कुछ दिन पहले ही देखी गई। काम का बोझ अधिक होने की वजह से या बाकी मज़दूरों से ऊँचा रुतबा होने की सोच में ग्रस्त कुछ मास्टर मशीन ख़राब होने पर जल्दी मरम्मत नहीं करते। मशीन चलाने वाले मज़दूर का नुकसान होता है क्योंकि वह पीस रेट पर काम करता है। जितनी अधिक देर मशीन खड़ी रहेगी उतने कम पीस बनेंगे और पैसे कम मिलेंगे। कई बार तो मशीन आपरेटर और मास्टर आपस में झगड़ पड़ते हैं। आ-जाकर मशीन मरम्मत का काम करने वाले मास्टरों से तो आपरेटरों का अकसर झगड़ा होता ही रहता है। जिस समय मास्टर कारख़ाने में आता है ज़रूरी नहीं कि उसी समय मशीन ख़राब हो। उसे एक कारख़ाने से दूसरे कारख़ाने दौड़ना पड़ता है। अकसर मशीन ख़राब होने पर मशीन चलाने वाला मज़दूर खुद ही मरम्मत कर लेता है। ऐसे में कई बार मशीन मास्टर मशीन ख़राब होने की सूचना मिलने पर सोच लेता है कि मशीन आपरेटर अपनेआप ठीक कर ही लेगा। इस तरह की बातें कई बार गम्भीर झगड़ों का कारण बन जाती हैं। इन झगड़ों को घटाने का एक तरीका तो यह हो सकता है कि मास्टर मालिक से सहायक की माँग करें। एक दूसरे पर बोझ डालने की सोच से किसी का फ़ायदा नहीं होगा। जब पावरलूम मज़दूरों में दशकों पहले मज़बूत संगठन था तब मशीन आपरेटरों को सहायक मिलता था। मुम्बई जैसे शहरों में आज भी यह लागू है।

कुछ मशीन मास्टर मालिकों के 'ख़ास बन्दे' हैं। वे मज़दूरों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यह एक ऐसी समस्या है जो अधिकतर कारख़ानों में देखने को मिलती है। मज़दूर एकता को तोड़ने के लिए अकसर मालिक तथाकथित स्टाफ़ और बाकी मज़दूरों में झगड़े पैदा करते हैं। मालिकों की चालबाज़ियों में फँसे मज़दूर अपने संघर्षशील साथियों का विरोध तक करने में चले जाते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए। मालिकों की चालबाजियों से ख़बरदार रहते हुए एकता को अधिक से अधिक फैलाने और मज़बूत बनाने में ही सभी मज़दूरों का भला है।

सभी मज़दूरों का मुख्य विरोध मालिकों के साथ है जो मज़दूरों की हड्डियाँ निचोड़कर मुनाफ़ा कमाने में लगे हुए हैं। सरकारी तंत्र में सब जगह उनकी पहुँच है। अधिकार लेने के लिए उठी मज़दूरों की आवाज़ को ख़ामोश करने के लिए वे हमेशा मंसूबे बनाते रहते हैं। इसलिए आपसी झगड़ों को दोस्ताना ढंग से हल करना चाहिए और साझे दुश्मन के ख़िलाफ़ एकता बनानी चाहिए। इन बातों की समझ लेकर अगर कोई भी संगठन आगे बढ़ता है तो वह स्वागतयोग्य है। अगर साझे दुश्मन के ख़िलाफ़ संघर्ष को दरकिनार करते हुए कोई संगठन मज़दूरों को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँटने का काम करता है तो वह पूँजीपतियों की ही सेवा कर रहा होगा।

– राज

यह लापरवाही नहीं एक और सामूहिक हत्याकाण्ड है

(पेज 16 से आगे)

हज़ार रुपए बतौर मुआवज़ा देने की बात कही है। उन्होंने मीडिया को दिये ब्यान में फ़रमाया कि वे हादसे के बाद इतना परेशान थे कि हर दस मिनट बाद अधिकारियों से राहत कार्यों के बारे में पूछते थे। लेकिन उनकी यह चिन्ता मुआवज़ा देते समय नज़र नहीं आयी! फ़िज़ूल के सरकारी समागमों पर करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाने वाली और पूँजीपतियों को दिल खोलकर आर्थिक फ़ायदे पहुँचाने वाली सरकारों के पास मज़दूरों के लिए सिर्फ़ घड़ियाली आँसू हैं।

कारख़ाने का मालिक शीतल विज इस भयानक हादसे का स्पष्ट दोषी है। पुलिस को मजबूरन उसे गिरफ़्तार करना ही पड़ा। लेकिन उसे हिरासत में पलकों पर बिठाया जा रहा है। पूँजीपतियों के संगठन, शिवसेना जैसे चुनावी धन्धेबाज़ और कई धार्मिक संगठन उसे रिहा करवाने के लिए चिल्ल-पों मचा रहे हैं। इन कारोबारियों, चुनावी धन्धेबाज़ों, धार्मिक कट्टरपन्थियों के लिए मालिक ही सब कुछ है। मज़दूर तो इनके लिए कीड़े-मकोड़े हैं जिनकी इन्हें कोई परवाह नहीं है।

यह हादसा और इसके बाद का सारा घटनाक्रम पूँजीवादी व्यवस्था के भ्रष्टाचार, अमानवीयता, पशुता, मुनाफ़ाख़ोर चरित्र की ही गवाही देता है। इस घटना ने देश के कोने-कोने में कारख़ाना मज़दूरों के साथ हो रही भयंकर बेइंसाफ़ी को एक बार फिर उजागर किया है। यहाँ भी वही कहानी दोहरायी गयी है जो पंजाब सहित पूरे भारत के औद्योगिक इलाक़ों में अक्सर सुनायी पड़ती है। मज़दूरों की मेहनत से बेहिसाब मुनाफ़ा कमाने वाले सभी बड़े-छोटे कारख़ानों के मालिक मज़दूरों की ज़िन्दगी की कोई परवाह नहीं करते हैं। वे मुनाफ़े की हवस में इतने अन्धे हो चुके हैं कि मज़दूरों की सुरक्षा के इन्तज़ामों को भयंकर रूप से अनदेखा कर रहे हैं। कभी मज़दूर कारख़ानों की कमज़ोर इमारतें गिरने से मरते हैं, कभी इमारतें ब्वॉयलर फटने से गिर जाती हैं, कभी इमारतों को इतना ओवरलोड कर दिया जाता है कि वे बोझ झेल नहीं पाती हैं। मज़दूर असुरक्षित मशीनों पर काम करते हुए अपनी जान या अपने अंग गँवा बैठते हैं। लेकिन मालिकों को इस बात की कोई परवाह नहीं है। उनके लिए तो मज़दूर बस मशीनों के पुर्ज़े हैं जिनके टूट-फूट जाने पर या घिस जाने पर उनकी जगह नये पुर्ज़ों को फिट कर दिया जाता है।

कारख़ानों में मालिकों का गुण्डा राज है। श्रम विभाग के अधिकारियों, इंस्पेक्टरों और अन्य कर्मचारियों की संख्या लगातार घटायी जा रही है। दूसरी तरफ़ कारख़ानों की संख्या लगातार बढ़ती गयी है। श्रम विभागों को लगभग निष्क्रिय कर दिया गया है। शीतल फ़ैब्रिक कारख़ाने की इमारत गिरने के बाद मुख्यमन्त्री ने बयान दिया कि पंजाब की सभी औद्योगिक और व्यापारिक इकाइयों की इमारतों का तुरन्त सर्वेक्षण करवाया जायेगा। पहली बात तो यह कि इस लुभावने ऐलान को कभी लागू नहीं किया जायेगा। दूसरी बात, मुख्यमन्त्री इमारतों के सर्वेक्षण के ऐलान के बहाने कारख़ानों में मज़दूरों की सुरक्षा के समूचे इन्तज़ामों की बात ही रफ़ा-दफ़ा कर गये। कारख़ाने की इमारत के डिज़ाइन से लेकर मशीनों की संख्या, सुरक्षा इन्तजामों, आग लगने से रोकथाम और बचाव के इन्तजामों आदि सभी मामलों में भयंकर अनदेखी की जाती है। औद्योगिक क्षेत्रों में यह आम बात है कि मज़दूर रातों को कारख़ानों में काम कर रहे होते हैं और कारख़ाना गेटों पर बाहर से ताला लगा दिया जाता है। इन सभी कारणों से औद्योगिक क्षेत्रों में बड़े-छोटे हादसे होते रहते हैं। इनमें से बहुत कम मामले ही लोगों के सामने आ पाते हैं। अधिकतर मामलों को मालिक पुलिस, प्रशासन, सरकार और मीडिया से मिलीभगत के सहारे दबा जाते हैं। जो मामले सामने आते भी हैं उनमें कुछ दिखावटी हो-हल्ले के बाद मामले रफ़ा-दफ़ा कर दिये जाते हैं। अगर मज़दूर सुरक्षा इन्तजामों के लिए, हादसों के बाद मुआवज़े के लिए आवाज़ उठाते हैं तो पूँजीपतियों, सरकारों, पुलिस, प्रशासन, गुण्डों और धन्धेबाज़ मीडिया आदि सभी मज़दूर विरोधी ताक़तों का गठबन्धन मज़दूर संघर्ष को कुचलने के लिए पूरा ज़ोर लगा देता है।

इसलिए औद्योगिक हादसों के लिए सम्बन्धित मालिकों, कुछ सरकारी अधिकारियों, कुछ मन्त्रियों या किसी एक सरकार की लापरवाही कहकर बात ख़त्म नहीं की जा सकती। ऐसे तमाम हादसे पूँजीवादी व्यवस्था के घिनौने अपराध हैं।

– लखविन्दर

माँगपत्रक शिक्षणमाला–10

ग़ुलामों की तरह खटने वाले घरेलू मज़दूरों को उनकी माँगों पर संगठित करना होगा

मज़दूर माँगपत्रक–2011 की पहली आठ माँगों – न्यूनतम मज़दूरी, काम के घण्टे कम करने, ठेका के ख़ात्मे, काम की बेहतर तथा उचित स्थितियों की माँग, कार्यस्थल पर सुरक्षा और दुर्घटना की स्थिति में उचित मुआवज़ा, प्रवासी मज़दूरों के हितों की सुरक्षा, स्त्री मज़दूरों की माँगों और ग्रामीण व खेतिहर मज़दूरों की माँगों – के बारे में विस्तार से जानने के लिए 'मज़दूर बिगुल' के पिछले अंक ज़रूर पढ़ें। –सम्पादक

देश में इस समय 10 करोड़ लोग घरेलू मज़दूर के तौर पर काम कर रहे हैं। लेकिन यह सिर्फ़ एक अनुमान है क्योंकि इसके बारे में कोई भी ठोस आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। वास्तविक संख्या इससे कहीं ज़्यादा हो सकती है। इनमें सबसे अधिक संख्या औरतों और बच्चों की है। अन्तरराष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के अनुसार घरेलू मज़दूर वह है जो मज़दूरी के बदले किसी निजी घर में घरेलू काम करता है। लेकिन भारत में इस विशाल आबादी को मज़दूर माना ही नहीं जाता है। ये किसी श्रम क़ानून के दायरे में नहीं आते और बहुत कम मज़दूरी पर सुबह से रात तक, बिना किसी छुट्टी के कमरतोड़ काम में लगे रहते हैं। ऊपर से इन्हें तमाम तरह का उत्पीड़न का भी सामना करना पड़ता है। मारपीट, यातना, यौन उत्पीड़न, खाना न देना, कमरे में बन्द कर देना जैसी घटनायें तो अक्सर सामने आती रहती हैं, लेकिन रोज़-ब-रोज़ इन्हें जो अपमान सहना पड़ता है वह इनके काम का हिस्सा मान लिया गया है। इन्हें कभी भी काम से निकाला जा सकता है और ये अपनी शिकायत कहीं नहीं कर सकते।

पिछले दो दशकों के दौरान घरेलू काम में लगे असंगठित मज़दूरों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। पूँजी की मार से देश के अलग-अलग हिस्सों से उजड़कर शहरों में काम की तलाश करने वालों में से एक बड़ी संख्या घरेलू कामों में लगे लोगों की है। औद्योगिक बस्तियों में रहने वाले मज़दूरों के घरों की स्त्रियाँ भी बड़ी संख्या में आसपास की कालोनियों में काम करने जाती हैं। महानगरों में बहुत से पुरुष भी फैक्टरियों में काम न मिलने के कारण घरों में काम करने लगे हैं। बड़ी संख्या में शहरों में लाकर बेचे गये बच्चे भी इस तरह के कामों में बँधुआ मज़दूरों की तरह खट रहे हैं। महानगरों में कई निजी ठेका कम्पनियाँ गाँवों और छोटे शहरों से आने वाले बेरोज़गारों की मजबूरी का फ़ायदा उठाती हैं। ये कम्पनियाँ परिवारों को ठेके पर घरेलू मज़दूर मुहैया करवाती हैं और इसके बदले ये काम कराने वालों से तगड़ी फ़ीस वसूलने के साथ-साथ मज़दूरों से भी भारी रक़म ऐंठ लेती हैं। कुछ एजेंसियाँ तो पहले महीने की पूरी तनख़्वाह ही रख लेती हैं। कई एजेंसियाँ छोटे क़स्बों और गाँवों से मज़दूरों को अच्छी तनख़्वाह और आराम के काम का लालच देकर महानगरों में ले आती हैं जहाँ आकर उन्हें पता चलता है कि वे ठगे गये।

मज़दूरों की इतनी बड़ी आबादी पूरी तरह असंगठित है। कोई ट्रेड यूनियन उनके मुद्दों को नहीं उठाती और कुछ जगहों पर उन्हें थोड़ा-बहुत संगठित किया भी है तो एनजीओ-टाइप संगठनों ने या कुछ सुधारवादी व्यक्तियों ने। घरेलू मज़दूरों के उत्पीड़न की अनेक घटनाओं पर मीडिया में होहल्ला मचने के बाद पिछले कुछ वर्षों में सात राज्यों, महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान और बिहार में घरेलू मज़दूरों के लिए क़ानून बनाया गया है या फिर किसी पहले से मौजूद श्रम क़ानून के दायरे में लाकर उन्हें थोड़ी-बहुत सामाजिक सुरक्षा प्रदान की गयी है। लेकिन ये सभी क़ानून अभी काग़ज़ पर ही हैं और तमाम श्रम क़ानूनों की तरह इन पर भी अमल शायद ही कहीं होता है।

मज़दूर माँगपत्रक-2011 में घरेलू मज़दूरों की माँगों को पुरज़ोर तरीक़े से उठाया गया है। माँगपत्रक ने घरेलू मज़दूरों के लिए पहली माँग यह उठायी है कि घरेलू मजदूरों के पंजीकरण की सुचारु व्यवस्था लागू करके उन्हें कार्ड जारी किया जाये तथा ठेका मजदूरों को मिलने वाली सभी सुविधाएँ उनके लिए लागू की जायें। मज़दूर माँगपत्रक की दूरगामी माँग ठेका मज़दूरी को पूरी तरह समाप्त करने की है। ठेका प्रथा को समाप्त करना मज़दूर वर्ग की एक प्रमुख राजनीतिक माँग है। लेकिन जब तक इस दूरगामी माँग के लिए संघर्ष जारी है, तब तक ख़ुद सरकार के बनाये हुए ठेका मज़दूरी क़ानून में दिये गये अधिकार और सुविधाएँ उन सभी मज़दूरों को मिलने चाहिए जो स्थायी रोज़गार में नहीं हैं।

माँगपत्रक की अगली माँग है कि काम के घण्टे, ओवरटाइम, प्रॉविडेण्ट फण्ड, ई.एस.आई., स्वास्थ्य एवं सुरक्षा विषयक अधिकार तथा स्त्री मज़दूरों के विशेष अधिकार सहित असंगठित मज़दूरों के अन्य हिस्सों के सभी क़ानूनी अधिकार सभी घरेलू मज़दूरों को भी क़ानूनी तौर पर प्रदान किये जायें। इसकी अगली प्रमुख माँग है कि अलग-अलग घरों में काम करने वाले घरेलू मज़दूरों की न्यूनतम मज़दूरी की दर घण्टे के हिसाब से तय की जाये। न्यूनतम मज़दूरी की सरकारी दर एक दिन के काम के हिसाब से तय होती है लेकिन घरेलू मज़दूर अक्सर एक ही दिन में कई घरों में काम करते हैं इसलिए उनकी न्यूनतम मज़दूरी की दर घण्टे के हिसाब से तय की जानी चाहिए।

मज़दूर माँगपत्रक-2011 में सरकार से माँग की गयी है कि घरेलू मज़दूरों के लिए कल्याणकारी योजनाओं के लिए उच्च आय वर्ग वाले परिवारों पर या विलासिता की वस्तुओं की ख़रीदारी पर विशेष सेस लगाकर धन का प्रबन्ध किया जाये। उनके पी.एफ़. और ई.एस.आई. के लिए निर्धारित कोष में सरकार और मालिक मुख्यतया योगदान दें। घरेलू मजदूरों से सिर्फ़ एक प्रतीक धनराशि ही ली जाये। माँगपत्रक ने संसद में लम्बित घरेलू मजदूर (पंजीकरण, सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याण) विधेयक, 2008 की ख़ामियों को दूर कर उसे यथाशीघ्र पारित करने की भी माँग की है। इसकी यह भी माँग है कि केन्द्र सभी राज्यों को घरेलू मज़दूरों के सभी श्रम-अधिकारों एवं सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध में क़ानून बनाने का निर्देश दे। जिन राज्यों में पहले से ऐसे क़ानून मौजूद हैं, उनकी ख़ामियों को दूरकर उन्हें प्रभावी बनाया जाये तथा पूरे देश में इस विषय से सम्बन्धित क़ानूनों में यथासम्भव समानता क़ायम की जाये।

घरेलू मज़दूरों से सम्बन्धित क़ानूनों पर अमल हो इसे पक्का करने के लिए माँगपत्रक उप श्रमायुक्त (डी.एल.सी.) कार्यालय स्तर पर विशेष इंस्पेक्टरों की नियुक्ति करने और विशेष निगरानी समितियाँ बनाने की माँग करता है। इन समितियों में घरेलू मज़दूरों के प्रतिनिधि, स्त्री मज़दूरों की प्रतिनिधि, स्त्री संगठनों की प्रतिनिधि, मज़दूर संगठनों के प्रतिनिधि, घरेलू मज़दूरों से काम कराने वालों के प्रतिनिधि और नागरिक अधिकार कर्मी शामिल होने चाहिए।

इसके साथ ही ट्रेड यूनियन क़ानून में आवश्यक संशोधन करके घरेलू मज़दूरों के ट्रेड यूनियन बनाने का अधिकार सुनिश्चित किया जाना चाहिए और ट्रेड यूनियन बनाने तथा उसका पंजीकरण कराने की प्रक्रिया सरल, त्वरित एवं पादरर्शी बनायी जानी चाहिए।

मज़दूर संगठनकर्ताओं के लिए यह एक महत्वपूर्ण चुनौती है कि इन असंगठित मज़दूरों को इनके अधिकारों के बारे में शिक्षित कैसे किया जाये, इनके बीच किस प्रकार रचनात्मक तरीके से राजनीतिक प्रचार कार्य करते हुये इन्हें संगठित किया जाये। इसकी शुरुआत इस विशाल असंगठित मेहनतकश आबादी को उनके क़ानूनी अधिकारों के लिए यूनियनों में संगठित करने से होनी चाहिए। उनकी लड़ाई को फ़ैक्टरियों एवं अन्य असंगठित क्षेत्रों में काम करने वाले मज़दूरों के संघर्ष के साथ एकजुट करना होगा।

पूँजी के ऑक्टोपसी पंजों में जकड़ी स्त्री मज़दूर

(पेज 4 से आगे)

स्वावलम्बन के नाम पर बहुत सस्ती दरों पर इन स्त्रियों से माल उत्पादन कराते हैं और माइक्रोक्रेडिट के नाम पर कर्ज़ देकर उनसे बैंकों से कई गुनी अधिक दरों पर सूद वसूलते हैं। अपने लुटेरे चरित्र पर पर्दापोशी करने के लिए सुधार कार्यक्रम भी चलाते रहते हैं। इन एन.जी.ओ. के मुलाज़िम भी नाम-मात्र की पगार पाते हैं और उनकी स्थिति भी कमोबेश असंगठित मज़दूरों जैसी ही होती है।

भारत की जिस तरक्की का खाता-पीता मध्यवर्ग दीवाना हो रहा है, उसके पीछे स्त्री-मज़दूरों के अकूत शोषण की अहम भूमिका है। इसका एक उदाहरण टेक्सटाइल और सिले-सिलाये कपड़ों का उद्योग है। खेती के बाद दूसरे नम्बर पर सबसे अधिक लोग इसी उद्योग में लगे हैं। कुछ साढ़े चार करोड़ लोगों को इस क्षेत्र में रोज़गार मिला हुआ है जिनमें लगभग तीन-चौथाई स्त्रियाँ हैं। वर्ष 2008 से जारी विश्वव्यापी मन्दी का भी सबसे ज़्यादा असर स्त्री मज़दूरों पर पड़ा है। पिछले तीन वर्षों में दुनिया में ढाई करोड़ औरतें बेरोज़गार हो गयी हैं। जो काम कर रही हैं, उनकी भी वास्तविक मज़दूरी में बहुत अधिक गिरावट आयी है। 2008 में भारत में 10 लाख टेक्सटाइल मज़दूर बेकार हो गये। इनमें ज़्यादातर स्त्रियाँ थीं।

पूँजीवादी लूटमार की सर्वाधिक शिकार इस असंगठित सर्वहारा समुदाय की करोड़ों की आबादी को जागृत और संगठित करना क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन के पुनरुत्थान के लिए अनिवार्य है, पर यह अत्यधिक चुनौती भरा, श्रम साध्य और लम्बा काम है। केवल सौदेबाज़ी करने वाले ट्रेडयूनियनों का ग़द्दार नेतृत्व तो यह काम कर ही नहीं सकता। पुरुष मज़दूरों में जो परम्परागत पुरुष स्वामित्ववादी मानसिकता गहरी जड़े जमाये है, वह भी स्त्री मज़दूरों की पहलक़दमी और सक्रियता को दबाने में अहम भूमिका निभाता है। स्वयं स्त्री मज़दूरों में अशिक्षा और राजनीतिक जागरूकता की कमी एक बड़ी बाधा है। जीवन की निराशा और अपनी दुरावस्था के मूल कारणों से अपरिचित होने के चलते स्त्री मज़दूरों में अन्धविश्वासों और धार्मिक रूढ़ियों का भी काफ़ी प्रभाव है। अगर स्त्री-पुरूष दोनों मज़दूरी करते हैं तब भी घरेलू कामों और बाल-बच्चों को सम्भालने की सारी ज़िम्मेदारी स्त्री के मत्थे होती है। बहुत पुरूष मज़दूर ख़ुद ही चाहते हैं कि कारख़ानों में काम करने बाहर निकलने के बजाये "उनकी औरतें" घर-बार सम्भालने हुए घर पर ही पीस रेट पर काम करके कुछ "अतिरिक्त कमाई" कर लिया करें। वे ख़ुद ही स्त्रियों की श्रम-शक्ति का कोई मोल नहीं समझते।

इन कठिन परिस्थितियों में भारत की स्त्री सर्वहारा की सोयी हुई, बिखरी हुयी विराट महाशक्ति को जगाने के लिए कई मोर्चों पर लम्बा और कठिन संघर्ष चलाना होगा। रात्रि पाठशालाओं, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और सघन प्रचार के जरिये उन्हें अपने अधिकारों के प्रति तथा धार्मिक रूढ़ियों-अन्धविश्वासों के विरुद्ध जागरूक बनाना होगा। मज़दूर बस्तियों में रोज़मर्रे के जीवन से जुड़ी माँगों पर उन्हें संगठित करना होगा। मज़दूर आन्दोलन में उनकी सक्रिय भागीदारी बढ़ाने की लगातार कोशिशें करनी होंगी और स्त्री मज़दूरों की अपनी माँगों पर उनकी अलग से लामबन्दी की भी कोशिश करनी होगी। साझा यूनियनों के अतिरिक्त स्त्री मज़दूरों के स्वतन्त्र संगठन भी बनाने होंगे। यह कठिन और लम्बा काम है, लेकिन ज़रूरी काम हैं। अधिक जागरूक और अगुवा स्त्री-मज़दूरों के अध्ययन-मण्डल अलग से संगठित करने होंगे जिनमें उन्हें मज़दूर क्रान्तियों के बारे में, समाजवाद के बारे में, क्रान्तियों में आधी आबादी की अनिवार्य सक्रिय भूमिका के बारे में, समाजवादी समाज में उनकी आज़ादी के बारे में तथा मज़दूरों के आर्थिक एवं राजनीतिक संघर्षों की प्रक्रिया के बारे में शिक्षित किया जाये। स्त्री मज़दूरों के भीतर से उनका नेतृत्व विकसित करना बेहद ज़रूरी है।

स्त्री मज़दूरों को संगठित करने की प्रक्रिया आर्थिक संघर्षों में उन्हें सक्रिय बनाने और बुनियादी जनवादी हक़ों के लिए लड़ना सिखाने के साथ ही सतत् सघन राजनीतिक प्रचार करती है। बहुत धैर्यवान, रचनात्मक और क्रान्तिकारी वैज्ञानिक समझ से लैस कार्यकर्ता ही इस प्रक्रिया को आगे बढ़ा सकते हैं। उन्हें मज़दूर आबादी के साथ एकरूप हो जाना होगा। निश्चय ही, आज ऐसे क्रान्तिकारी मज़दूर संगठनकर्त्ताओं की भारी कमी है। इस कमी को दूर करना होगा। करते हुए सीखना होगा और फिर जनता को सिखाना होगा। चीज़ों को बदलने के लिए उन्हें समझना होगा और चीज़ों को बदलने की प्रक्रिया में ख़ुद को बदल डालना होगा।

– कविता

मई दिवस की कहानी

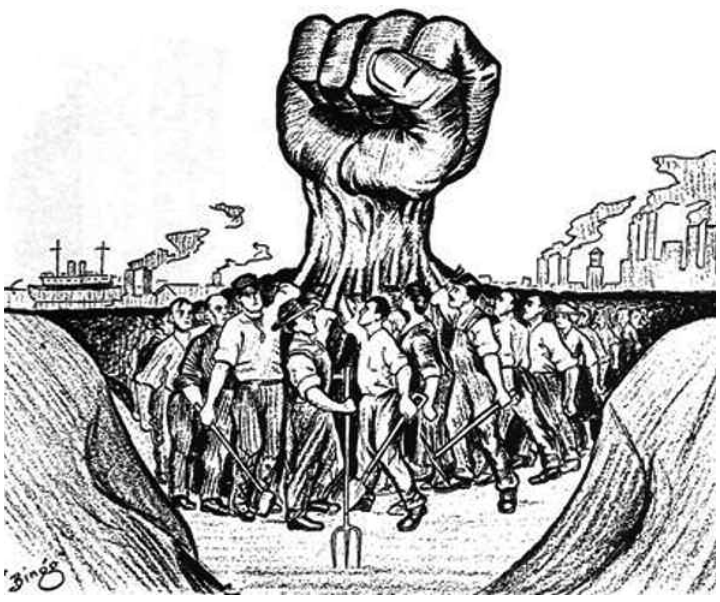

मज़दूरों ने अपने अनुभवों से समझ लिया था कि उनकी एकता ही उनकी सबसे बड़ी ताक़त है।

मज़दूरों का त्योहार **मई दिवस** आठ घण्टे काम के दिन के लिए मज़दूरों के शानदार आन्दोलन से पैदा हुआ। उसके पहले मज़दूर चौदह से लेकर सोलह-अठारह घण्टे तक खटते थे। कई देशों में काम के घण्टों का कोई नियम ही नहीं था। "सूरज उगने से लेकर रात होने तक" मज़दूर कारख़ानों में काम करते थे। दुनियाभर में अलग-अलग इस माँग को लेकर आन्दोलन होते रहे थे। भारत में भी 1862 में ही मज़दूरों ने इस माँग को लेकर कामबन्दी की थी। लेकिन पहली बार बड़े पैमाने पर इसकी शुरुआत अमेरिका में हुई।

घण्टों तक काम करना आम बात थी। अधिकांश मज़दूर अपने जीवन के 40 साल भी पूरे नहीं कर पाते थे। अगर मज़दूर इसके ख़िलाफ़ आवाज़ उठाते थे तो उन पर निजी गुण्डों, पुलिस और सेना से हमले करवाये जाते थे! लेकिन इन सबसे अमेरिका के जाँबाज़ मज़दूर दबने वाले नहीं थे! उनके जीवन और मृत्यु में वैसे भी कोई फ़र्क नहीं था, इसलिए उन्होंने लड़ने का फैसला किया! 1877 से 1886 तक मज़दूरों ने अमेरिका भर में आठ घण्टे के कार्यदिवस की माँग पर एकजुट और संगठित होने शुरू किया। 1886 में पूरे अमेरिका में मज़दूरों ने **'आठ घण्टा समितियाँ'** बनायीं। शिकागो में मज़दूरों का आन्दोलन सबसे अधिक ताक़तवर था। वहाँ पर मज़दूरों के संगठनों ने तय किया कि 1 मई के दिन सभी मज़दूर अपने औज़ार रखकर सड़कों पर उतरेंगे और आठ घण्टे के कार्यदिवस का नारा बुलन्द करेंगे।

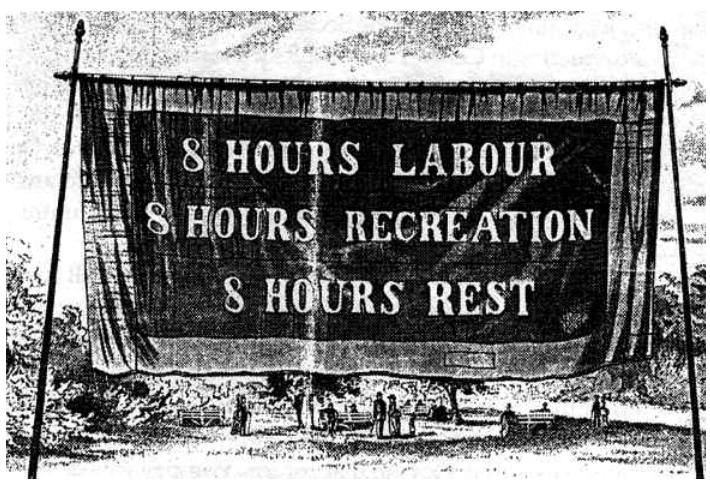

1886 में मज़दूरों द्वारा अमेरिका के एक शहर में खड़ा किया गया विशालकाय बैनर। इस पर लिखा है – 8 घण्टा मेहनत, 8 घण्टा मनोरंजन, 8 घण्टा आराम।

✦✦✦

अमेरिका में एक विशाल मज़दूर वर्ग पैदा हुआ था। इन मज़दूरों ने अपने बलिष्ठ हाथों से अमेरिका के बड़े-बड़े शहर बसाये, सड़कों और रेल पटरियों का जाल बिछाया, नदियों को बाँधा, गगनचुम्बी इमारतें खड़ी कीं और पूँजीपतियों के लिए दुनिया भर के ऐशो-आराम के साधन जुटाये। उस समय अमेरिका में मज़दूरों को 12 से 18 घण्टे तक खटाया जाता था। बच्चों और महिलाओं का 18

✦✦✦

एक मई 1886 को पूरे अमेरिका के लाखों मज़दूरों ने एक साथ हड़ताल शुरू की। इसमें 11,000 फ़ैक्टरियों के कम से कम तीन लाख अस्सी हज़ार मज़दूर शामिल थे। शिकागो महानगर के आसपास सारा रेल यातायात ठप्प हो गया और शिकागो के ज़्यादातर कारख़ाने और वर्कशाप बन्द हो गये। शहर के मुख्य मार्ग मिशिगन एवेन्यू पर अल्बर्ट पार्सन्स के नेतृत्व में मज़दूरों ने एक शानदार जुलूस निकला।

मज़दूरों की बढ़ती ताक़त और उनके नेताओं के अडिग संकल्प से भयभीत उद्योगपति लगातार उन पर हमला करने की घात में थे। सारे के सारे अख़बार (जिनके मालिक पूँजीपति थे।) "लाल ख़तरे" के बारे में चिल्ल-पों मचा रहे थे। पूँजीपतियों ने आसपास से भी पुलिस के सिपाही और सुरक्षाकर्मियों को बुला रखा था। इसके अलावा कुख्यात पिंकरटन एजेंसी के गुण्डों को भी हथियारों से लैस करके मज़दूरों पर हमला करने के लिए तैयार रखा गया था। पूँजीपतियों ने इसे "आपात स्थिति" घोषित कर दिया था। शहर के तमाम धन्नासेठों और व्यापारियों की बैठक लगातार चल रही थी जिसमें इस "ख़तरनाक स्थिति" से निपटने पर विचार किया जा रहा था।

शिकागो के कारख़ानों के इलाक़ों से गुज़रता मज़दूरों का जुलूस।

✦✦✦

3 मई को शहर के हालात बहुत तनावपूर्ण हो गये जब मैकार्मिक हार्वेस्टिंग मशीन कम्पनी के मज़दूरों ने दो महीने से चल रहे लॉक आउट के विरोध में और आठ घण्टे काम के दिन के समर्थन में कार्रवाई शुरू कर दी। जब हड़ताली मज़दूरों ने पुलिस पहरे में हड़ताल तोड़ने के लिए लाये गये तीन सौ ग़द्दार मज़दूरों के ख़िलाफ़ मीटिंग शुरू की तो निहत्थे मज़दूरों पर गोलियाँ चलायी गयीं। चार मज़दूर मारे गये और बहुत से घायल हुए। अगले दिन भी मज़दूर ग्रुपों पर हमले जारी रहे। इस बर्बर पुलिस दमन के ख़िलाफ़ चार मई की शाम को शहर के मुख्य बाज़ार हे मार्केट स्क्वायर में एक जनसभा रखी गयी। इसके लिए शहर के मेयर से इजाज़त भी ले ली गयी थी।

मीटिंग रात आठ बजे शुरू हुई। क़रीब तीन हज़ार लोगों के बीच पार्सन्स और स्पाइस ने मज़दूरों का आह्वान किया कि वे एकजुट और संगठित रहकर पुलिस दमन का मुक़ाबला करें। तीसरे वक्ता सैमुअल फ़ील्डेन बोलने के लिए जब खड़े हुए तो रात के दस बज रहे थे और ज़ोरों की बारिश शुरू हो गयी थी। इस समय तक स्पाइस और पार्सन्स अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ वहाँ से जा चुके थे। इस समय तक भीड़ बहुत कम हो चुकी थी – कुछ सौ लोग ही रह गये थे। मीटिंग क़रीब-क़रीब ख़त्म हो चुकी थी कि 180 पुलिसवालों का एक जत्था धड़धड़ाते हुए हे मार्केट चौक में आ पहुँचा। उसकी अगुवाई कैप्टन बॉनफ़ील्ड कर रहा था जिससे शिकागो के नागरिक उसके क्रूर और बेहूदे स्वभाव के कारण नफ़रत करते थे। मीटिंग में शामिल लोगों को चले जाने का हुक्म दिया गया। सैमुअल फ़ील्डेन पुलिसवालों को यह बताने की कोशिश ही कर रहे थे कि यह शान्तिपूर्ण सभा है, कि इसी बीच किसी ने मानो इशारा पाकर एक बम फेंक दिया। आज तक बम फेंकने वाले का पता नहीं चल पाया है। यह माना जाता है कि बम फेंकने वाला पुलिस का भाड़े का टट्टू था। स्पष्ट था कि बम का निशाना मज़दूर थे लेकिन पुलिस चारों और फैल गयी थी और नतीजतन बम का प्रहार पुलिसवालों पर हुआ। एक मारा गया और पाँच घायल हुए। पगलाये पुलिसवालों ने चौक को चारों ओर से घेरकर भीड़ पर अन्धाधुन्ध गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं। जिसने भी भागने की कोशिश की उस पर गोलियाँ और लाठियाँ बरसायी गयीं। छः मज़दूर मारे गये और 200 से ज़्यादा जख्मी हुए। मज़दूरों ने अपने ख़ून से अपने कपड़े रँगकर उन्हें ही झण्डा बना लिया।

हेमार्केट की मीटिंग में बोलते हुए मज़दूर नेता सैमुअल फ़ील्डेन

✦✦✦

इस घटना के बाद पूरे शिकागो में पुलिस ने मज़दूर बस्तियों, मज़दूर संगठनों के दफ़्तरों, छापाख़ानों आदि में ज़बरदस्त छापे डाले। प्रमाण जुटाने के लिए हर चीज़ उलट-पुलट डाली गयी। सैकड़ों लोगों को मामूली शक पर पीटा गया और बुरी तरह टॉर्चर किया गया। हज़ारों गिरफ़्तार किये गये। आठ मज़दूर नेताओं – **अल्बर्ट पार्सन्स, आगस्ट स्पाइस, जार्ज एंजेल, एडाल्फ़ फ़िशर, सैमुअल फ़ील्डेन, माइकेल श्वाब, लुइस लिंग्ग और आस्कर नीबे** पर झूठा मुक़दमा चलाकर उन्हें हत्या का मुजरिम क़रार दिया गया। इनमें से सिर्फ़ एक, सैमुअल फ़ील्डेन बम

(पेज 13 पर जारी)

मई दिवस की कहानी

पेज 12 से आगे...

पुलिस के एक एजेण्ट ने मीटिंग में बम फेंक दिया।

फटने के समय घटना स्थल पर मौजूद था। जब मुक़दमा शुरू हुआ तो सात लोग ही कठघरे में थे। डेढ़ महीने तक अल्बर्ट पार्सन्स पुलिस से बचता रहा। वह पुलिस की पकड़ में आने से बच सकता था लेकिन उसकी आत्मा ने यह गवारा नहीं किया कि वह आज़ाद रहे जबकि उसके बेक़सूर साथी फ़र्जी मुक़दमें में फँसाये जा रहे हों। पार्सन्स ख़ुद अदालत में आया और जज से कहा, **"मैं अपने बेक़सूर साथियों के साथ कठघरे में खड़ा होने आया हूँ।"**

✦✦✦

पूँजीवादी न्याय के लम्बे नाटक के बाद 20 अगस्त 1887 को शिकागो की अदालत ने अपना फ़ैसला दिया। सात लोगों को सज़ाए-मौत और एक (नीबे) को पन्द्रह साल क़ैद बामशक्कत की सज़ा दी गयी। **स्पाइस** ने अदालत में चिल्लाकर कहा था कि **"अगर तुम सोचते हो कि हमें फाँसी पर लटकाकर तुम मज़दूर आन्दोलन को... ग़रीबी और बदहाली में कमरतोड़ मेहनत करनेवाले लाखों लोगों के आन्दोलन को कुचल डालोगे, अगर यही तुम्हारी राय है – तो ख़ुशी से हमें फाँसी दे दो। लेकिन याद रखो ... आज तुम एक चिंगारी को कुचल रहे हो लेकिन यहाँ-वहाँ, तुम्हारे पीछे, तुम्हारे सामने, हर ओर लपटें भड़क उठेंगी। यह जंगल की आग है। तुम इसे कभी भी बुझा नहीं पाओगे।"**

सारे अमेरिका और तमाम दूसरे देशों में इस क्रूर फ़ैसले के ख़िलाफ़ भड़क उठे जनता के ग़ुस्से के दबाव में अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट ने पहले तो अपील मानने से इन्कार कर दिया लेकिन बाद में इलिनाय प्रान्त के गवर्नर ने फ़ील्डेन और श्वाब की सज़ा को आजीवन कारावास में बदल दिया। 10 नवम्बर 1887 को सबसे कम उम्र के नेता लुइस लिंग्ग ने कालकोठरी में आत्महत्या कर ली।

✦✦✦

अगला दिन (11 नवम्बर 1887) मज़दूर वर्ग के इतिहास में काला शुक्रवार था। पार्सन्स, स्पाइस, एंजेल और फ़िशर को शिकागो की कुक काउण्टी जेल में फाँसी दे दी गयी। अफ़सरों ने मज़दूर नेताओं की मौत का तमाशा देखने के लिए शिकागो के दो सौ धनवान शहरियों को बुला रखा था। लेकिन मज़दूरों को डर से काँपते-घिघियाते देखने की उनकी तमन्ना धरी की धरी रह गयी। वहाँ मौजूद एक पत्रकार ने बाद में लिखा : " चारों मज़दूर नेता क्रान्तिकारी गीत गाते हुए फाँसी के तख़्ते तक पहुँचे और शान के साथ अपनी-अपनी जगह पर खड़े हो हुए। फाँसी के फन्दे उनके गलों में डाल दिये गये। स्पाइस का फन्दा ज़्यादा सख़्त था, फ़िशर ने जब उसे ठीक किया तो स्पाइस ने मुस्कुराकर धन्यवाद कहा। फिर स्पाइस ने चीख़कर कहा, **'एक समय आयेगा जब हमारी ख़ामोशी उन आवाज़ों से ज़्यादा ताक़तवर होगी जिन्हें तुम आज दबा डाल रहे हो...'** फिर पार्सन्स ने बोलना शुरू किया, **'मेरी बात सुनो... अमेरिका के लोगो! मेरी बात सुनो... जनता की आवाज़ को दबाया नहीं जा सकेगा...'** लेकिन इसी समय तख़्ता खींच लिया गया।"

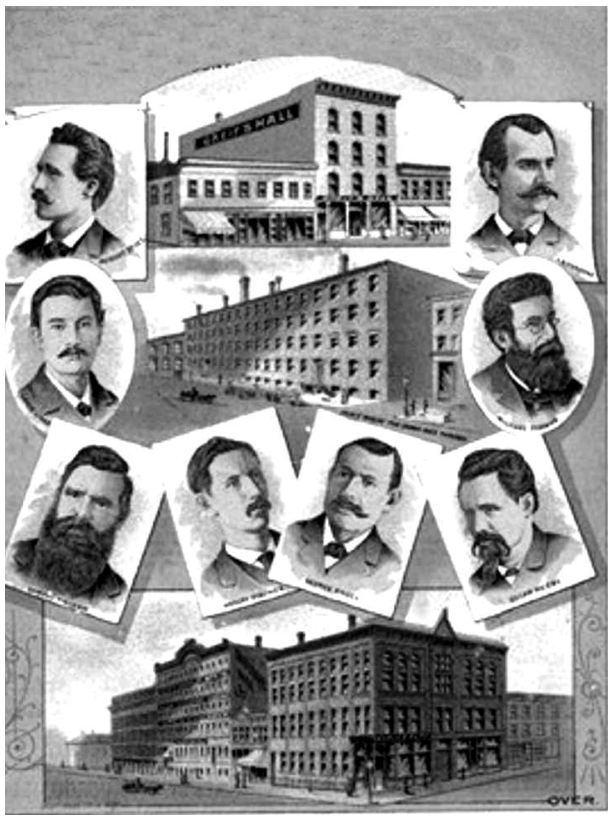

आठों गिरफ़्तार मज़दूर नेताओं पार्सन्स, स्पाइस, एंजेल, फ़िशर, फ़ील्डेन, श्वाब, लिंग्ग और नीबे तथा शिकागो की घटनाओं की जगहों को दिखाने वाला उस समय का एक पोस्टर

13 नवम्बर को चारों मज़दूर नेताओं की शवयात्रा शिकागो के मज़दूरों की एक विशाल रैली में बदल गयी। पाँच लाख से भी ज़्यादा लोग इन नायकों को आख़िरी सलाम देने के लिए सड़कों पर उमड़ पड़े।

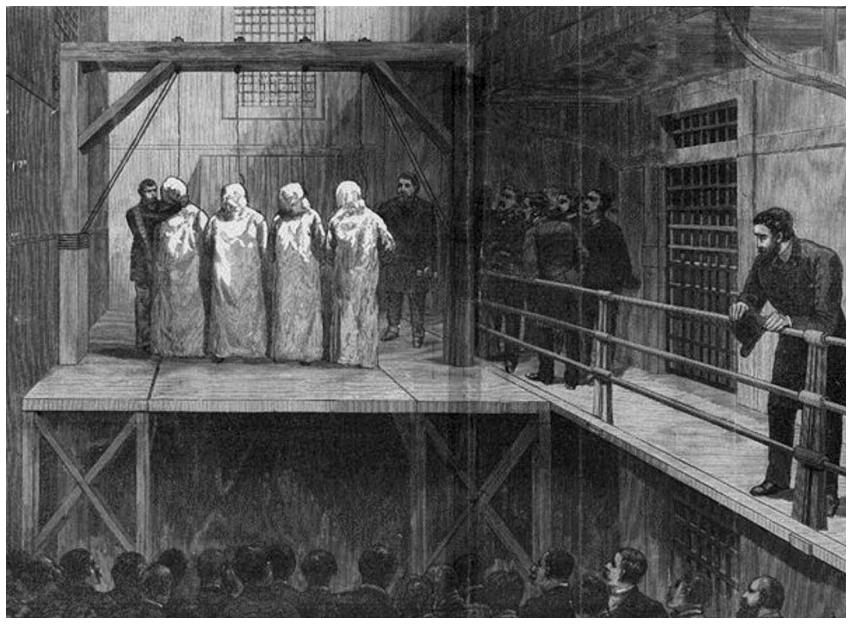

पार्सन्स, स्पाइस, फ़िशर और एजेंल फाँसी के तख़्ते पर। उन्नकी मौत का तमाशा देखने के लिए अमेरिका के कई शहरों के अमीर जुटे थे।

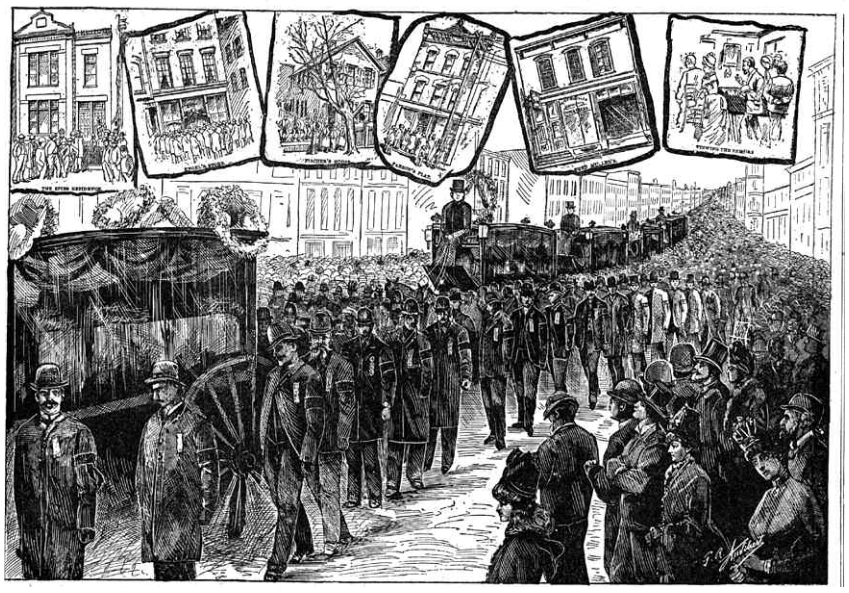

शिकागो के शहीद मज़दूर नेताओं की शवयात्रा

तब से गुज़रे 126 सालों में अनगिनत संघर्षों में बहा करोड़ों मज़दूरों का ख़ून इतनी आसानी से धरती में जज़्ब नहीं होगा। फाँसी के तख़्ते से गूँजती स्पाइस की पुकार पूँजीपतियों के दिलों में ख़ौफ़ पैदा करती रहेगी। अनगिनत मज़दूरों के ख़ून की आभा से चमकता लाल झण्डा हमें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता रहेगा।

मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी और मार्क्सवाद को विकृत करने का संशोधनवादी दस्तावेज़

(पेज 7 से आगे)

ही नहीं पाते। वास्तव में, जब नन्दीग्राम और सिंगूर के समय किसान प्रश्न पर एक बहस शुरू हुई थी तो माकपा के बुद्धिजीवी मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियों के अधकचरे बुद्धिजीवियों पर हावी हो गये थे, और वह भी मार्क्सवाद को विकृत करके और ग़लत-सलत तर्क और तथ्य देते हुए!

आगे इसी खण्ड में माकपा हमें बताती है कि चीन में एक विशेष क़िस्म का समाजवाद निर्मित हो रहा है। इसकी सफलता के लिए हमें जीडीपी, जीएनपी और प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोत्तरी के आँकड़े बताये जाते हैं। लेकिन इन पैमानों पर तो भारत भी अपनी तरक्की दिखला सकता है! लेकिन उस तरक्की की चीर-फाड़ माकपा के टट्टू बुद्धिजीवी दहाड़-दहाड़कर करते हैं। लेकिन चीन में अमीर-ग़रीब के बीच की बढ़ती खाई (ऊपर के 10 प्रतिशत और नीचे के 10 प्रतिशत के बीच में आय का फ़र्क़ 22 गुना है!), बेरोज़गारी, ग़रीबी, वेश्यावृत्ति के आधार पर वे चीन के विकास के पूँजीवादी असमान विकास होने की कभी बात नहीं करते! जबकि भारत इस मामले में तो चीन का चेला है! यहाँ पर नवउदारवादी नीतियों को लागू करने में जिस मॉडल की बार-बार बात की जाती है, वह चीनी मॉडल है! लेकिन माकपा इन सब चीज़ों को नज़रअन्दाज़ करते हुए, अपने मनमुआफ़िक़ नतीजे निकालती है ताकि उसके संशोधनवाद को तुष्ट और पुष्ट किया जा सके! माकपा बस अन्त में इतना कह देती है कि चीन में कुछ दिक्क़तें हैं और चीन की पार्टी में पूँजीपतियों की भर्ती से भी दिक्क़तें बढ़ रही हैं। लेकिन माकपा का चीन के संशोधनवादी गुरुओं पर पूरा भरोसा है और उसका मानना है कि चीन की पार्टी अन्ततः 'चीनी क़िस्म का समाजवाद' बनाकर ही मानेगी! निश्चित रूप से! माकपा एक अच्छे शिष्य की तरह खड़िया और स्लेट लेकर चीन की तरफ देखती हुई खड़ी है! बस बात यह है कि इन संशोधनवादी, मज़दूर वर्ग की पीठ में छुरा भोंकने वाले, ग़द्दार गुरू-चेला से मज़दूर वर्ग को कुछ नहीं मिलने वाला और उसे इन ढोंगियों-पाखण्डियों से बचकर रहना होगा।

आगे वियतनाम, क्यूबा और उत्तर कोरिया के "समाजवाद" का उदाहरण देते हुए माकपा नेतृत्व इस बात को पुष्ट करने का प्रयास करता है कि 21वीं सदी में समाजवाद को विशेष तरीक़े से ही बनाना होगा, जिसमें निजी सम्पत्ति, बाज़ार, शोषण, दमन, उत्पीड़न सबकुछ होगा! अब ऐसे समाजवाद का सपना तो मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, स्तालिन या माओ किसी ने भी नहीं देखा था! इस समाजवाद में समाजवादी बचा क्या है? इसमें मज़दूर वर्ग का बचा क्या है? ज़ाहिर है कुछ नहीं! क्यों? क्योंकि माकपा का लक्ष्य समाजवाद तक जाना है ही नहीं! उसका मकसद समाजवाद का नाम लेते हुए पूँजीवाद की ही रक्षा करना, उसे बरक़रार रखना और उसकी उम्र बढ़ाना है! यही तो संशोधनवाद की भूमिका होती है!

सातवें खण्ड में माकपा ने लातिन अमेरिका में जारी बोलिवारियन विकल्प के प्रयोगों का गुणगान किया है। माकपा का मानना है कि वेनेजुएला में शावेज़, बोलीविया में इवो मोरालेस आदि की सत्ताएँ पूँजीवाद के भीतर रहते हुए ही साम्राज्यवाद और नवउदारवाद का एक विकल्प दे रही हैं! इस विकल्प पर माकपा नेतृत्व फिदा है! क्योंकि इनमें कुछ भी समाजवादी नहीं है। इन प्रयोगों को जनता का समर्थन प्राप्त है जिसके दो कारण हैं। एक है साम्राज्यवाद से लातिनी जनता की नफ़रत और दूसरा कारण है कि इन सत्ताओं द्वारा फिलहाल आपसी सहयोग और तेल अधिशेष के बूते कल्याणकारी नीतियाँ लागू करना जिसके कारण पहले की सैन्य जुण्टाओं के शासन की तुलना में जनता की शिक्षा, चिकित्सा, रिहायश आदि तक पहुँच बहुत बढ़ गयी है। लेकिन ऐसी सत्ताएँ हमेशा नहीं टिकी रह सकतीं। या तो वहाँ चीज़ें समाजवाद की ओर जाएँगी, या फिर खुले, नंगे नवउदारवादी पूँजीवाद की तरफ़। अगर उन्हें समाजवाद की तरफ़ जाना होगा तो उन्हें बलपूर्वक सम्पन्न की गयीं और मज़दूर वर्ग द्वारा मज़दूर वर्ग की पार्टी के नेतृत्व में सम्पन्न की गयीं मज़दूर क्रान्तियों के जरिये ही जाना होगा! कोई प्रबुद्ध जनवादी शासक, जैसे कि शावेज़, अपने सुधारों के जरिये समाजवाद की स्थापना नहीं कर सकता! क्रान्ति का प्रश्न पूरी राज्य सत्ता का प्रश्न है, और सर्वहारा क्रान्ति बुर्जुआ राज्यसत्ता के ध्वंस के जरिये ही सम्पन्न हो सकती है। संसदीय रास्ते से अगर कोई प्रगतिशील ताक़त सत्ता में आती है और समाजवादी नीतियाँ लागू करने की प्रक्रिया को एक हद से आगे बढ़ाती है तो उसका वही हश्र होता है जो चिली में 1973 में सल्वादोर अयेन्दे का हुआ था, जहाँ साम्राज्यवादी सहयोग से सेना ने अयेन्दे का तख़्ता पलट कर दिया था। और शावेज़ तो मार्क्सवादी भी नहीं है। लेकिन माकपा इन संक्रमणकालीन सत्ताओं को एक विकल्प के तौर पर पेश करती है क्योंकि इनमें वे सभी गुण हैं जो समाजवादी क्रान्ति से बचने के लिए संशोधनवादी सुझाते हैं – यानी, राज्य कल्याणवाद और राज्य इज़ारेदार पूँजीवाद!

आठवें खण्ड ('भारतीय परिस्थितियों में समाजवाद') में माकपा नेतृत्व हमें बताता है कि भारत में अभी जनता की जनवादी क्रान्ति के कार्यभार को मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में सम्पन्न किया जाना है; इसके लिए मज़दूर वर्ग को संगठित होना होगा। इसके बाद माकपा बताती है कि यह काम संसदीय और संसदेतर जरियों से किया जायेगा! मज़दूर और किसान वर्ग का संश्रय स्थापित किया जायेगा! ये सारी बकवास करने बाद हमें भारतीय समाजवाद की ख़ासियत बताई जाती है, जो माकपा शान्तिपूर्ण तरीक़े से संसद के जरिये स्थापित करने के बाद लागू करेगी। इसमें पहली चीज़ है खाद्य सुरक्षा, पूर्ण रोज़गार, शिक्षा, रिहायश और स्वास्थ्य सुविधाओं तक सार्वभौमिक पहुँच। इन सबसे जनता के जीवन स्तर में बढ़ोत्तरी की जायेगी और समाज के परिधिगत हिस्सों को आगे लाया जायेगा। दूसरी बात जो माकपा कहती है, वह उसके ख्रुश्चेवपन्थ को नंगा कर देती है। इस समाजवाद में मज़दूर वर्ग की तानाशाही नहीं होगी; यह पूरी जनता की सत्ता होगी, जो नागरिकों को वास्तविक नागरिक व जनवादी अधिकार देगी! यानी, पूरी जनता खुद को ही अधिकार देगी! इसी से इस धोखाधड़ी का पर्दाफाश हो जाता है। निश्चित रूप से, अगर इसमें मज़दूर वर्ग की तानाशाही नहीं होगी, तो वह पूँजीपति वर्ग की तानाशाही होगी! इसके बाद, माकपा एक सूची पेश करती है जिसके अनुसार उसकी समाजवादी व्यवस्था में जातिवाद, साम्प्रदायिकता का अन्त हो जायेगा, वगैरह-वगैरह! और अन्त में, माकपा बताती है कि भारतीय समाजवाद में कई प्रकार की सम्पत्तियाँ होंगी, जिसमें कि निजी सम्पत्ति भी शामिल है, और इसके बाद माकपा वही बकवास करती है जो वह चीनी क़िस्म के समाजवाद को सही ठहराने के लिए कर चुकी थी! इस तरह से 'चीनी', 'भारतीय', 'लातिन अमेरिकी' क़िस्मों के समाजवाद के नाम पर समाजवाद की क्रान्तिकारी सारवस्तु का ही अपहरण कर लिया जाता है। माकपा एक ऐसे क़िस्म के समाजवाद की बात करती है, जिसमें से समाज ग़ायब है और पूँजी का बोलबाला है!

दस्तावेज़ के अन्त में माकपा ने फिर से कुछ "विचारधारात्मक तोपें" छोड़ी हैं, जैसे कि मार्क्सवाद प्रासंगिक है, उत्तरआधुनिकतावाद ग़लत है, सामाजिक जनवाद ग़लत है (!?) वगैरह! लेकिन आप भी अब तक इस पूरे दस्तावेज़ का असली इरादा समझ गये होंगे। इसका मक़सद था मार्क्सवाद और समाजवाद का नाम लेते हुए मार्क्सवाद और समाजवाद के सिद्धान्त को विकृत कर डालना, उसकी क्रान्तिकारी अन्तर्वस्तु को नष्ट कर डालना, और नंगे और बेशर्म क़िस्म के संशोधनवाद को मार्क्सवाद का नाम देना! लेकिन इन सभी प्रयासों के बावजूद अगर माकपा के इस दस्तावेज़ को कोई आम व्यक्ति भी पंक्तियों के बीच ध्यान देते हुए पढ़े तो माकपा की मज़दूर वर्ग से ग़द्दारी, उसका पूँजीपति वर्ग के हाथों बिकना, उसका बेहूदे क़िस्म का संशोधनवाद और 'भारतीय क़िस्म के समाजवाद' के नाम पर भारतीय क़िस्म के पूँजीवाद के लक्ष्य को प्राप्त करने का उसका शर्मनाक इरादा निपट नंगा हो जाता है! इस दस्तावेज़ में माकपा के घाघ संशोधनवादी सड़क पर निपट नंगे भाग चले हैं। मज़दूर वर्ग के इन ग़द्दारों की असलियत को हमें हर जगह बेनक़ाब करना होगा! ये हमारे सबसे ख़तरनाक दुश्मन हैं। इन्हें नेस्तनाबूत किये बग़ैर देश में मज़दूर वर्ग का क्रान्तिकारी राजनीतिक आन्दोलन आगे नहीं बढ़ पायेगा!

●

रिकॉर्ड अनाज उत्पादन के बावजूद देश का हर चौथा आदमी भूखा क्यों है?

(पेज 16 से आगे)

उदारीकरण के 20 वर्षों में यह कम से कमतर होता चला गया है और आज अपने निम्नतम स्तर पर पहुँच गया है।

आँकड़ों द्वारा प्रस्तुत सच्चाई की तस्वीर का एक दूसरा पहलू यह है कि आज देश के औसत नागरिक को उतना भी खाने को नहीं मिल रहा है जितना पचास साल पहले मिलता था। जबकि उस समय देश में हरित क्रान्ति की शुरुआत भी नहीं हुई थी। 1960 में जहाँ खाद्यान्न उपलब्धता का औसत 446.9 ग्राम था वह आज सिर्फ 440.4 ग्राम रह गया है। एक तरफ तो देश आर्थिक महाशक्ति बनकर उभर रहा है और आणविक हथियार ढोने की क्षमता वाली मिसाइलें दाग रहा है वहीं दूसरी तरफ भुखमरी और कुपोषण के मामले में हमारा स्थान दुनिया के सबसे पिछड़े देशों में शुमार होता है। यहाँ तक कि पाकिस्तान और बंगलादेश तो छोड़िये अफ्रीकी महाद्वीप के कई देश भी अपने लोगों को हमसे बेहतर और ज़्यादा भोजन मयस्सर करा पा रहे हैं।

आँकड़ों से पेट तो नहीं भर सकता, लेकिन आँकड़ों से हमें वह सच्चाई दिखती है जिसे छिपाने की तमाम कोशिशों में पूँजीवादी सरकारें लगी रहती हैं। अभी ज्यादा दिन नहीं हुए जब योजना आयोग के उपाध्यक्ष और प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह के ख़ासमख़ास मोण्टेक सिंह अहलुवालिया ने बहुत ज़ोर देकर कहा था कि देश की स्थिति चाहे जैसी भी हो लेकिन यह एक अटल सत्य है कि देश में ग़रीबी कम हुई है। लेकिन ऊपर बताये गये आँकड़े जो सरकार के ही एक प्रकाशन (आर्थिक सर्वेक्षण 2011-12) से लिये गये हैं मोण्टेक सिंह के झूठ को तार-तार कर देते हैं। किसी को बहुत बड़ा गणितज्ञ होने की जरूरत नहीं है, इन आँकड़ों को देखकर कोई साधारण आदमी भी देश के ग़रीब लोगों की दुर्दशा का अन्दाज़ा लगा सकता है।

1990 से देश में लागू आर्थिक सुधारों की नीतियों ने एक तरफ जहाँ गरीबों के मुँह का निवाला छीन लिया है वहीं दूसरी तरफ खुशहाल मध्य और उच्च मध्यवर्ग का एक छोटा तबका भी अस्तित्व में आया है जो जितना खाता है उससे ज्यादा बर्बाद करता है। फाइव स्टार होटलों से लेकर मैक्डोनाल्ड और पित्जा हट तक दुनिया के सभी नामचीन ब्राण्ड आज भारत के इस छोटे से अमीर तबके की सेवा में दिन-रात खुले रहते हैं। एक तरफ देश के आधे बच्चे कुपोषण के शिकार हैं वहीं दूसरी तरफ यह अमीर तबका और इस तबके के बच्चे मोटापे से परेशान है। पहले तो ये लोग ठूँस-ठूँस कर खाते हैं और फिर वज़न घटाने के लिए कभी जिम की ओर भागते हैं तो कभी डॉक्टर की ओर तो कभी योग गुरुओं की ओर। आज हमारे समाज में ये दो विरोधी स्थितियाँ एकसाथ मौजूद हैं। एक तरफ बदहाली और तंगहाली का सागर है तो दूसरी तरफ विलासिता और अश्लील-अराजक भोगवाद की मीनारें हैं।

देश में खाद्यान्न का रिकॉर्ड उत्पादन हो रहा है लेकिन फिर भी लोग भूखे पेट सोने को मजबूर हैं। देश में हर साल बहुत सारा अनाज बर्बाद हो जाता है। जब उच्चतम न्यायालय ने सरकार को आदेश दिया कि अनाज को बर्बाद करने के बजाय वह उसे गरीबों में बाँट दे तो हमारे ईमानदार प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को यह बात बहुत नागवार गुज़री थी। उनका कहना था कि अनाज मुफ़्त बाँटने से अनाज उत्पादक हतोत्साहित हो जायेंगे। अर्थशास्त्री प्रधानमन्त्री को भूख से मरने वाले लोगों की नहीं बल्कि अनाज पैदा करने वाले बड़े पूँजीपति किसानों की ज़्यादा चिन्ता थी। आज भी देश में खाद्यान्न के भण्डारण की समुचित व्यवस्था नहीं है और लगभग आधा अनाज आज भी खुले में रखा जाता है जहाँ कुछ हिस्सा सड़-गल जाता है तो कुछ चूहों के पेट में चला जाता है। सरकार मानती है कि देश में हर साल कुल उत्पादन का 10 प्रतिशत हिस्सा बेकार हो जाता है। यानी कि लगभग 58000 करोड़ रुपये की खाद्य सामग्री उचित भण्डारण सुविधा न होने के कारण बर्बाद हो जाती है।

एक कवि ने कहा है कि **'गर थाली आपकी खाली है तो सोचना होगा कि खाना कैसे खाओगे?'** आज बहुत चिन्ता के साथ इस विषय पर सोचा जाना चाहिए कि गोदामों में अनाज ठूँसा हुआ है और फिर भी लोग भूख से मर रहे हैं तो इसका ज़िम्मेदार कौन है? यह भी सोचना चाहिए कि उदारीकरण की नीतियों के लागू होने के बाद से जबकि देश में अरबपतियों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है तो देश का हर चौथा आदमी भूखा क्यों है और देश का हर दूसरा बच्चा कुपोषित क्यों है? उसी कविता में कवि ने यह भी कहा है कि **'ये आप पर है कि पलट दो सरकार को उल्टा'।**

शहीदे आजम भगतसिंह ने भी तो यही सन्देश दिया है, **'अगर कोई सरकार जनता को उसके बुनियादी अधिकारों से वंचित करती है तो उस देश के नौजवानों का हक़ ही नहीं बल्कि कर्तव्य बन जाता है कि ऐसी सरकार को पलट दें या तबाह कर दें'।**

- जय पुष्प

समर तो शेष है

नये संकल्प लें फिर से
नये नारे गढ़ें फिर से
उठो संग्रामियो! जागो!
नयी शुरुआत करने का समय फिर आ रहा है
कि जीवन को चटख गुलनार करने का
समय फिर आ रहा है !

चलो, अब इक नये अभियान के पदचाप गूँजें
मौत की सुनसान सूनी वादियों में फिर।
कि नूतन सर्जना के राग भर दें
शोकगीतों से भरी इन घाटियों में फिर।

दरकती हिमशिलाएँ, सर्दियों के बाद हरदम ही
बसन्त आता रहा है, यह प्रकृति की गति रही है।
अँधेरे गर्भ में ही रौशनी पलती रही है,
पराजय झेलने पर भी
शिविर में न्याय के हरदम मशालें जीत की
जलती रही हैं।
पराजय आज का सच है
समर तो शेष है फिर भी
उठो ओ सर्जको!
नवजागरण के सूत्र रचने का
समय फिर आ रहा है
कि जीवन को चटख गुलनार करने का
समय फिर आ रहा है।

गुलामों की नई फौजें सजेंगी, हिल उठेगी
रोम की ताकत और आतंक पिघलेगा।
महल वर्साय का फिर धूल में मिल जायेगा,
गतिरोध टूटेगा, महाविद्रोह उट्ठेगा।

कम्यूनार्ड पेरिस के उठेंगे हर नगर में,
अव्रोरा जलपोत से फिर तोप गरजेंगे।
लातिनी अमेरिका, एशिया में, अफ्रीका में
क्रान्तियों के रक्तवर्णी मेघ बरसेंगे।
न उनकी जीत अन्तिम है
न अपनी हार अन्तिम है
उठो ओ नौजवानो !
इन्क़लाबों के नये संस्करण रचने का
समय फिर आ रहा है
कि जीवन को चटख गुलनार करने का
समय फिर आ रहा है।

हर शहर से एक शिकागो उठ खड़ा हो
सोच कर आगे बढ़ें हम फिर।
मई दिवस बन जाये हर दिन साल का
यह सोच कर तैयारियाँ करने लगें हम फिर।

सुनो इतिहास कहता है, पराजय झेलकर ही
क्रान्तियाँ परवान चढ़ती हैं, नया इतिहास बनता है।
अँधेरा आज गहरा है, श्रमिक जन मुक्त होंगे
एक दिन निश्चित, समय का ज्ञान कहता है।
सजेंगे फिर नये लश्कर
मचेगा रण महाभीषण
उठो ओ शिल्पियो!
नवयुद्ध के उपकरण गढ़ने का
समय फिर आ रहा है
कि जीवन को चटख गुलनार करने का
समय फिर आ रहा है।

– शशि प्रकाश

मई दिवस पर मेहनतकशों का आह्वान

(पेज 1 से आगे)

मिलेगी जब वे संगठित होकर पूँजीवाद का खात्मा करेंगे और **'उत्पादन, राजकाज और समाज के पूरे ढाँचे के स्वयं मालिक बनेंगे।'** केवल मज़दूर क्रान्ति ही स्वयं मज़दूर वर्ग को और समूची मानवता को सच्ची आज़ादी दे सकती है।

पिछले बीस वर्षों के दौरान उत्पादन के ढाँचों में बदलाव करके पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग की संगठित शक्ति को बिखराने में काफ़ी हद तक कामयाब हुआ है। कारखानों में अधिकांश काम अब ठेका, दिहाड़ी या कैजुअल मज़दूरों से कराना आम चलन बन चुका है। हमारे देश में आज कुल मज़दूर आबादी का लगभग 95 प्रतिशत तथाकथित असंगठित क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। मज़दूर वर्ग के इस भौतिक बिखराव ने उसकी चेतना पर भी काफ़ी नकारात्मक असर डाला है। वह अपनी ताक़त को बँटा हुआ और पूँजीपति वर्ग की संगठित शक्ति के सामने खुद को कमज़ोर, असहाय और निरुपाय महसूस कर रहा है। आज मज़दूर आबादी को संगठित करने की व्यावहारिक चुनौतियाँ बढ़ गयी हैं और संगठन के पुराने प्रचलित तरीकों और रूपों से काम नहीं चलने वाला है। लेकिन कोई भी परिस्थिति ऐसी नहीं हो सकती कि बुर्जुआ वर्ग द्वारा उपस्थित की गयी चुनौती के सामने सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि हाथ खड़े कर दें। हमें मज़दूर वर्ग को संगठित करने के नये रूपों और तरीक़ों को ईजाद करना होगा। दरअसल कारख़ाना-केन्द्रित ट्रेड यूनियनवाद से पीछा छुड़ाये बिना आज मज़दूर आन्दोलन को नये सिरे से संगठित ही नहीं किया जा सकता। मज़दूरों को संगठित करने की तात्कालिक व्यावहारिक चुनौतियों से निपटना मज़दूरों के क्रान्तिकारी हरावलों का काम है। ज़मीनी संगठनकर्ताओं को पुरानी रूढ़ियों से मुक्त होकर सर्जनात्मक तरीके से संगठन के नये-नये रूप और तरीक़े खोज निकालने होंगे।

अगर आज की परिस्थिति पर थोड़ा गहराई से विचार किया जाये तो हमें वे छुपी हुई क्रान्तिकारी सम्भावनाएँ नज़र आयेंगी जो आँखों से ओझल होने पर सामने मौजूद फ़ौरी चुनौतियाँ ज़्यादा कठिन लगने लगती हैं। आज के दौर में औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूर वर्ग के काम के जो हालात हैं और पूँजीपतियों का समूचा गिरोह, उनकी सरकारें और पुलिस-क़ानून-अदालतें जिस तरह उसके ऊपर एकजुट होकर हमले कर रही हैं उससे मज़दूर वर्ग स्वयं यह सीखता जा रहा है कि उसकी लड़ाई अलग-अलग पूँजीपतियों से नहीं बल्कि समूची व्यवस्था से है। यह ज़मीनी सच्चाई अर्थवाद के आधार को अपनेआप ही कमज़ोर बना रही है और मज़दूर वर्ग की राजनीतिक चेतना के उन्नत होने के लिए अनुकूल ज़मीन मुहैया करा रही है। इसकी सही पहचान करना और इस आधार पर मज़दूर आबादी के बीच घनीभूत एवं व्यापक राजनीतिक प्रचार की कार्रवाइयाँ संचालित करना ज़रूरी है। मज़दूरों की व्यापक आबादी को यह भी बताया जाना चाहिए कि असेम्बली लाइन का बिखराव आज भले ही मज़दूरों को संगठित करने में बाधक है लेकिन दूरगामी तौर पर यह फ़ायदेमन्द है। यह मज़दूर वर्ग की ज़्यादा व्यापक एकता का आधार तैयार कर रहा है और कारख़ाना-केन्द्रित और पेशागत संकुचित मनोवृत्ति को दूर करने में भी मददगार साबित होगा। इसने मज़दूर वर्ग की विश्वव्यापी एकजुटता का आधार भी मज़बूत किया है। अब 'दुनिया के मज़दूरो, एक हो!' का विश्व ऐतिहासिक नारा एक व्यावहारिक नारे की ओर बढ़ता जा रहा है।

मज़दूर वर्ग को संगठित करने की तमाम वस्तुगत नयी चुनौतियों के साथ-साथ क्रान्तिकारी हरावलों के सामने एक मनोगत चुनौती भी आम तौर पर सामने आती है। मज़दूरों के बीच जमीनी स्तर पर काम करने वाले संगठनकर्ता, जो शुरुआती दौरों में अधिकांशत: मध्यवर्गीय सामाजिक पृष्ठभूमि से आते हैं, अपने वर्गीय विचारधारात्मक विचलनों-भटकावों का शिकार होकर अर्थवाद, उदारतावाद और लोकरंजकतावाद के गड्ढे में जा गिरते हैं। उनके वर्गीय जड़-संस्कारों के चलते मज़दूरों की तात्कालिक आर्थिक लड़ाइयाँ या ट्रेड यूनियन क़वायदें राजनीतिक कार्य का स्थानापन्न बन जाती हैं। ये संगठनकर्ता भूल जाते हैं कि वे मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी हरावल हैं और आम मज़दूरों के तात्कालिक आर्थिक हितों के दबावों के आगे घुटने टेक देते हैं। उनका सर्वहारा मानवतावाद बुर्जुआ मानवतावाद में बदल जाता है और क्रान्तिकारी राजनीतिक कार्यों का स्थान अर्थवादी-सुधारवादी कदमताल ले लेते हैं। दिलचस्प बात यह है कि ऐसे संगठनकर्ता अपनी इस रूटीनी कवायदों में इस क़दर मगन हो जाते हैं उन्हें यही मज़दूरों के बीच असली क्रान्तिकारी कार्य लगने लगता है और क्रान्तिकारी राजनीतिक कार्य लफ़्फ़ाज़ी लगने लगती है। इस आत्मगत चुनौती को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। देश का क्रान्तिकारी मज़दूर आन्दोलन आज जिस शुरुआती मुकाम पर खड़ा है वहाँ इन भटकावों के लिए बेहद अनुकूल ज़मीन मौजूद है। मज़दूरों के क्रान्तिकारी हिरावलों का जो समूह इस चुनौती की भी ठीक से पहचान कर पायेगा और सही क्रान्तिकारी सांगठनिक पद्धति से उसका मुकाबला करेगा वही मज़दूर वर्ग के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक कार्य को आगे

(पेज 2 पर जारी)

गतिविधियाँ

मई दिवस पर विभिन्न आयोजन

दिल्ली में करावलनगर मज़दूर यूनियन, दिल्ली मेट्रो कामगार यूनियन, बिगुल मज़दूर दस्ता और स्त्री मज़दूर संगठन के नेतृत्व में 1 मई की सुबह 8 बजे से मज़दूर अधिकार रैली निकाली गयी। करावलनगर के लेबर चौक से शुरू होकर यह रैली इलाक़े की अनेक मज़दूर बस्तियों और कारख़ानों तथा गोदामों के इलाक़ों से गुज़रती रही जिसके बाद यह एक जनसभा में बदल गयी। सभा में वक्ताओं ने कहा आठ घण्टे के कार्यदिवस की माँग वेतन बढ़ाने जैसी आर्थिक माँगों से बढ़कर है। यह एक मज़दूर के लिए इंसानों जैसी ज़िन्दगी जीने की माँग है! अगर हम पशुओं की तरह नहीं जीना चाहते, अगर हम अपने बच्चों को यह नर्क जैसा जीवन नहीं देना चाहते तो हमें अपनी मानवीय गरिमा और सम्मान के लिए फिर से जंग छेड़नी होगी! हमें मई दिवस को इंसान की तरह जीने के हक़ के संघर्ष का दिन बना देना होगा।

दिल्ली के बादली इलाक़े में बिगुल मज़दूर दस्ता और स्त्री मज़दूर संगठन की ओर से 1 मई की शाम को राजा विहार बस्ती में जनसभा, सांस्कृतिक कार्यक्रम और फ़िल्म शो आयोजित किया गया। सभा में वक्ताओं ने कहा कि आज भितरघातियों और नक़ली मज़दूर नेताओं ने मज़दूरों के लाल झण्डे को भी कलंकित कर दिया है। दिखावटी विरोध प्रदर्शनों और रस्मी हड़तालों से मज़दूरों को बहकाने का काम करके वे लुटेरों के राज को बचाने का ही काम कर रहे हैं। हमें इनसे सावधान रहना होगा और यह समझ लेना होगा कि मेहनतकश की मुक्ति खुद मेहनतकश का काम है। इस मौक़े पर दो नाटकों और क्रान्तिकारी गीतों के अलावा मई दिवस की कहानी दर्शाने वाली छोटी फिल्म 'लड़ाई जारी है' दिखायी गयी।

लुधियाना में कारख़ाना मज़दूर यूनियन और टेक्सटाइल मज़दूर यूनियन ने पूडा ग्राउण्ड में मई दिवस कॉन्फ्रेंस का आयोजन किया। सम्मेलन की शुरुआत में मई दिवस के शहीदों को सलामी देते हुए लाल झण्डा फहराया गया। विभिन्न वक्ताओं ने सम्मेलन में कहा कि मज़दूर हमेशा से शोषण-दमन और नाइंसाफ़ी का सामना करते रहे हैं लेकिन उन्होंने कभी संघर्ष का रास्ता नहीं छोड़ा है। मई दिवस इस बात का गवाह है कि मज़दूरों ने आज तक जो कुछ भी हासिल किया है वह लड़कर ही हासिल किया है और उन्हें एक बार फिर शोषण और उत्पीड़न से पूर्ण आज़ादी की राह पर आगे बढ़ने का संकल्प लेना होगा। इस मौक़े पर कई क्रान्तिकारी गीत पेश किये गये और "मई दिवस के शहीद अमर रहें" के नारों के साथ सम्मेलन समाप्त हुआ।

गोरखपुर में टेक्सटाइल वर्कर्स यूनियन और बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से टाउनहाल स्थित नगरनिगम के पार्क में मई दिवस पर जनसभा आयोजित की गयी। बरगदवा इलाक़े के अनेक कारख़ानों के मज़दूर रैली निकालकर सभा में पहुँचे। सहजनवा स्थित गीडा औद्योगिक क्षेत्र से भी काफ़ी संख्या में मज़दूरों ने सभा में शिरकत की। सभा में वक्ताओं ने मज़दूर नेताओं के लगातार जारी दमन की कड़ी निन्दा करते हुए कहा कि पूँजीपतियों और गोरखपुर प्रशासन के गँठजोड़ के ख़िलाफ़ मज़दूरों का संघर्ष जारी रहेगा।

मुम्बई के चेम्बूर इलाक़े में रिलायंस एनर्जी के कान्ट्रैक्ट वर्कर्स ने मई दिवस पर रैली निकाली और सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया। इस मौक़े पर बिगुल मज़दूर दस्ता के साथियों ने मज़दूरों को मई दिवस के इतिहास के बारे में विस्तार से बताया और आज नये सिरे से संगठित होकर संघर्ष करने की ज़रूरत पर बल दिया।

– बिगुल डेस्क

रिकॉर्ड अनाज उत्पादन के बावजूद देश का हर चौथा आदमी भूखा क्यों है?

कागज पर छपे हुए बड़े-बड़े आँकड़ों से अगर पेट भर सकता तो यह देश के हर भूखे नागरिक के लिए खुशी का समय होता। कृषि मन्त्री शरद पवार ने हाल ही में बताया कि इस वर्ष (2011-12 के दौरान) देश में 2500 लाख टन का रिकॉर्ड खाद्यान्न उत्पादन होने वाला है। पर बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है। सच्चाई यह है कि पिछले पाँच वर्षों के दौरान देश में खाद्यान्न का उत्पादन नित नयी ऊचाइयाँ छूता गया है। आज़ादी के तुरन्त बाद 1950 में जहाँ देश में 500 लाख टन खाद्यान्न का उत्पादन हुआ था वहीं 1990 में देश में खाद्यान्न का उत्पादन 1750 लाख टन पहुँच गया और 2011-12 में तो खाद्यान्न का उत्पादन इतना बढ़ जाने का अनुमान है (2500 लाख टन) कि इस भण्डार को रखने के लिए गोदामों की सख़्त कमी महसूस हो रही है।

मगर अफ़सोस कि आँकड़ों से पेट नहीं भरता, वरना देश का हर चौथा नागरिक भूखे पेट क्यों सोता! बड़ी अजीब स्थिति है कि एक तरफ देश में खाद्यान्न का उत्पादन रिकॉर्ड स्तरों को छू रहा है वहीं दूसरी तरफ देश की एक चौथाई आबादी को पेट भर भोजन नहीं मिल पा रहा है और लगभग आधी आबादी कुपोषण का

प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता के पंचवर्षीय आँकड़े

आर्थिक सुधारों के पहले

वर्ष	खाद्यान्न उपलब्धता
1972-76	433.7 ग्राम
1977-81	460.8 ग्राम
1982-86	460.8 ग्राम
1987-91	480.3 ग्राम

आर्थिक सुधारों के बाद

1982-96	474.9 ग्राम
1997-2001	457.3 ग्राम
2002-06	452.4 ग्राम
2007-10'	440.4 ग्राम

* 2010 तक के आँकड़े ही उपलब्ध हैं।
'द हिन्दू' (13 अप्रैल 2012) के सौजन्य से

शिकार है, हर तीसरी औरत में ख़ून की कमी है और हर दूसरे बच्चे का वज़न सामान्य से कम है। पर इससे भी अधिक हैरत की बात यह है कि बिल्कुल उसी दौरान (1990 से 2012 तक) जबकि देश में खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ता गया है, देश के नागरिकों को खाद्यान्न की उपलब्धता घटती गयी है। कहने को आज हर शहर के गली-चौराहे में पिज़्ज़ा-बर्गर-मोमो की दूकानें खुल गयी हैं लेकिन 20 साल पहले की तुलना में आज देश के एक औसत नागरिक की थाली छोटी हो गयी है। 1990 में जहाँ देश के एक औसत नागरिक को 480.3 ग्राम भोजन मिलता था वहीं 2010 में उसे सिर्फ़ 440.4 ग्राम भोजन नसीब हो पा रहा है।

(देखें तालिका)

खाद्यान्न की उपलब्धता की स्थिति की गम्भीरता सिर्फ इसी में निहित नहीं है कि खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में कमी आयी है। ज़्यादा गम्भीर बात यह है कि 1990 में उदारीकरण की नीतियों के लागू किये जाने के बाद से हर पाँच साल में खाद्यान्न की उपलब्धता लगातार घटती चली गयी है। 1976 से 1990 के पाँच वर्षों में (जबकि उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू नहीं हुई थी) देश में खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 480.3 ग्राम थी। 1992 से 1996 के चार वर्षों में यह घटकर 474.9 ग्राम हो गयी, 1997-2011 में 457.3 ग्राम, 2002-06 में 452.4 ग्राम और 2007-2010 में और भी घटकर 440.4 ग्राम हो गयी। ये आँकड़े एक रुझान बताते हैं कि जबसे उदारीकरण की नीतियाँ लागू होनी शुरू हुई हैं तबसे लोगों के पेट पर लात पड़ती जा रही है और समय बीतने के साथ इसकी मार और भी तगड़ी होती जा रही है।

इस स्थिति की तुलना अगर उदारीकरण के पहले की स्थिति से करें तो इसकी गम्भीरता का अहसास और भी गहराई से किया जा सकता है। 1990 में आर्थिक सुधारों से पहले के बीस वर्षों की अवधि पर नजर डालें तो देखा जा सकता है कि 1972 से 1991 के बीच हर पाँच साल में प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की उपलब्धता लगातार बढ़ती जा रही थी। 1972-76 के बीच जहाँ प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की उपलब्धता 433.7 ग्राम थी, वहीं 1977-81 के दौरान 447.9 ग्राम, 1982-86 के दौरान 460.8, ग्राम और 1987-91 के दौरान 480.3 ग्राम थी। यानी कि उदारीकरण से पहले जहाँ हर पाँच में लोगों को खाद्यान्न की उपलब्धता में इजाफा होता गया था वहीं

(पेज 14 पर जारी)

जालन्धर में होज़री कारख़ाने की इमारत गिरने से कम से कम 24 मज़दूरों की मौत

यह लापरवाही नहीं एक और सामूहिक हत्याकाण्ड है

पिछले 15-16 अप्रैल की रात पंजाब के जालन्धर शहर के फोकल प्वाइण्ट इलाक़े में स्थित शीतल फ़ैब्रिक नाम के कम्बल बनाने वाले एक कारख़ाने की चार मंज़िला इमारत गिरने से कम से कम 24 मज़दूरों की मौत हो गयी और अनेक मज़दूर गम्भीर रूप से जख़्मी हो गये। कई तो ज़िन्दगी भर के लिए अपाहिज हो गये। यह टिप्पणी लिखे जाने तक मीडिया की ख़बरों के मुताबिक़ 24 मज़दूरों की लाशें मलबे में से निकाली जा चुकी हैं। लेकिन इस मामले में मीडिया की ख़बरों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसलिए मृतकों, अपाहिजों, घायलों की सही-सही संख्या के बारे में कुछ भी पुख्ता ढंग से नहीं कहा जा सकता।

इस भयानक हादसे के बाद भी मालिक और सरकारी तन्त्र ने घिनौनी तिकड़मबाज़ियाँ शुरू कर दीं। कारख़ानों में अक्सर होने वाले जानलेवा हादसों की तरह इस हादसे के बाद भी कारख़ाने में काम कर रहे मज़दूरों की असल संख्या के बारे में लगातार झूठ बोला गया। हादसे के तुरन्त बाद कारख़ाना मालिक शीतल विज का बयान था कि कारख़ाने में 70 मज़दूर थे। जालन्धर के डिप्टी कमिश्नर ने मालिक की ही बात दोहरायी। लेकिन बाद में राहत कार्यों के दौरान ही जब मृतकों और जख़्मियों की संख्या इससे ऊपर चली गयी तो इस झूठ की पोल खुल गयी। तब मालिक को कहना पड़ा कि कारख़ाने में 100 मज़दूर थे। हादसे के दौरान जो मज़दूर ज़िन्दा बचे हैं उनका कहना है कि कारख़ाने में उस वक़्त कम से कम 250 मज़दूर काम कर रहे थे। इस सम्बन्ध में हाज़िरी रजिस्टर या किसी अन्य दस्तावेज़ के ज़रिये कोई भी पुख़्ता जानकारी अभी तक पेश नहीं की गयी है।

इमारत गिरने के बाद का सारा घटनाक्रम मालिक, पुलिस, प्रशासन और सरकार की कारगुज़ारी के बारे में गम्भीर सवाल खड़े करता है। आधी रात को इमारत गिरी। सुबह साढ़े छह बजे राहत कार्यों की शुरुआत होती है। राहत कार्य शुरू करने में इतनी देरी क्यों? भूलना नहीं चाहिये कि कारख़ाने का मालिक शीतल विज पंजाब के बड़े उद्योगपतियों में से एक है। इसने कुछ ही दिन पहले हिन्दी दैनिक अखबार नया सवेरा भी शुरू किया है। अच्छे असर-रसूख वाला यह उद्योगपति भारतीय जनता पार्टी का नेता भी है। वह श्री देवीतालाब मन्दिर की प्रबन्ध कमेटी का प्रधान भी है। लाशों को ग़ायब करना, ज़ख़्मियों को यहाँ-वहाँ भेज देना आदि अनेक कारण इसकी वजह हो सकते हैं। औद्योगिक हादसों के समय कारख़ानों के मालिक पुलिस-प्रशासन को मोटा पैसा चढ़ाकर सबसे पहले यही काम करने की कोशिश करते हैं। यह तो हादसा इतना बड़ा था कि परदा डालने का काम एक हद तक ही हो सकता था।

ज़ख़्मियों को कारखाने के मालिक शीतल विज की अध्यक्षता में चल रहे देवी तालाब चैरिटेबल अस्पताल में भेजा गया। सरकारी डॉक्टर जब इस अस्पताल में ज़ख़्मी मज़दूरों से मुलाक़ात करने पहुँचे तो अस्पताल के अधिकारियों ने इससे मना कर दिया। बाद में सिविल सर्जन ने अस्पताल के दौरा किया। पता चला कि वहाँ तो सिर्फ 5-6 ज़ख़्मी मज़दूर ही हैं। बाक़ियों को मामूली मरहम-पट्टी करके आनन-फानन में वहाँ से भगा दिया गया था।

इमारत के गिरने का असल कारण अभी भी पहेली बना हुआ है। मालिक कह रहा है कि पड़ोस में बन रही नयी इमारत के कारण उसके कारख़ाने की इमारत गिर पड़ी। मज़दूर बता रहे हैं कि भारी मशीनें और तैयार माल दूसरी मंज़िल पर पड़ा था। मशीनों के चलने पर इमारत हिलती थी। मज़दूरों के मुताबिक़ इसी वजह से इमारत ताश के पत्तों की तरह ढह गयी। कई लोग बताते हैं कि एक धमाके की आवाज़ के बाद इमारत गिरी। यह भी शक़ ज़ाहिर किया जा रहा है कि यह चार मंज़िला इमारत सही पैमानों के मुताबिक़ नहीं बनायी गयी थी और काफ़ी कमज़ोर थी। पंजाब सरकार ने हादसे की जाँच के लिए तीन कमेटियाँ बनायी हैं। सरकारी जाँच पूँजीपतियों के अपराधों को कितना सामने लाती हैं इसके बारे में किसी को कोई भ्रम नहीं रखना चाहिए।

लेकिन कई बातें तो अभी ही सामने आ चुकी हैं। पंजाब स्टेट इण्डस्ट्री एण्ड एक्सपोर्ट कारपोरेशन के नियमों के अनुसार किसी औद्योगिक इकाई की ऊँचाई 38 फीट से ज़्यादा नहीं होनी चाहिए। लेकिन गिरने वाली इमारत ही नहीं, शीतल विज की सभी फैक्ट्रियों की ऊँचाई इससे कहीं ज़्यादा है। किसी भी फैक्ट्री में प्लॉट के 65 प्रतिशत से ज़्यादा पर निर्माण नहीं होना चाहिए, लेकिन विज की सभी फ़ैक्ट्रियों में इसका धड़ल्ले से उल्लंघन होता था और पंजाब सरकार के अफ़सर आँख बन्द किये रहते थे। सरकार कितनी चौकस थी इसका अन्दाज़ा तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि हादसे के बाद पुलिस ने कहा कि गिरने वाला कारख़ाना सरकारी कागज़ों में मौजूद ही नहीं था। यानी किसी भी विभाग में इसका कोई पंजीकरण नहीं था। इतना बड़ा मौत का कारख़ाना कई साल से वहाँ चल रहा था और अन्धी सरकार को वह नज़र ही नहीं आ रहा था।

सरकार की ओर से घोषित मुआवज़ा हादसे में मरने वालों, अपाहिजों और गम्भीर रूप से ज़ख़्मी हुए मज़दूरों के साथ घटिया मज़ाक ही कहा जा सकता है। उद्योगपतियों के आदरणीय मुख्यमन्त्री प्रकाश सिंह बादल ने मृतकों के लिए दो-दो लाख, गम्भीर रूप से ज़ख़्मी हुए हर मज़दूर को 65 हज़ार और मामूली रूप से जख्मी हुए हर मज़दूर को 45

(पेज 10 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006